पंजीयन क्रमांक : 70269/98
आई एस एस एन : 0972-169X

डाक पंजीयन क्रमांक : डी एल–एस डब्ल्यू–1/4082/12-14
डाक से भेजने की तिथियां : 26-27 अग्रिम माह की
प्रकाशन तिथि : अग्रिम माह की 24 तारीख

विज्ञान प्रसार

ड्रीम 2047

जुलाई 2014 | खण्ड 16 | अंक 10 | 5.00 रुपए

संपादकीय: विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार के दस महत्वपूर्ण तत्व 2
नाभिकीय विखंडन के पचहत्तर वर्ष 3
जैविक हथियार – एक वास्तविक खतरा 7
आर्द्र भूमि और जलपक्षियों का संरक्षण: एक पारिस्थितिक समाधान 9
अवसोडियम रक्तता के खतरे 12
गुदा विदर: कारण, घरेलु नुस्खे एवं उपचार 13
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां 16

... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें ... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें ... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ...

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार के दस महत्त्वपूर्ण तत्व

डॉ. आर. गोपीचन्द्रन

मई 2014 में ब्राज़ील में हुए अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी जनसंचार सम्मेलन (पी सी एस टी) में सभी महाद्वीपों के लगभग 50 देशों से आए 500 से अधिक पंजीकृत प्रतिभागी थे। सम्मेलन में हुए विमर्शों का केंद्रीय विषय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार के विविध रूप, प्रकार्य, अनुप्रयोग, प्रभाव, उपकरण और सहसंबंधित विधियां थीं। इनमें से दस महत्त्वपूर्ण सहसंबंधित तत्व और उनसे जुड़ी चुनौतियों ने इस जरूरत पर बल दिया है कि उनकी ओर सार्थक रूप से विचार किया जाए। ये आवश्यकताएं हैं:

1. विज्ञान की भूमिका के प्रति सामान्य जन और उनकी दृष्टि में वृद्धि करना।
2. तथ्यों की जानकारी एवं अनुप्रयोगों के प्रभावों के परे जाकर 'विज्ञान की कार्य प्रणाली' पर ध्यान केंद्रित करना।
3. विज्ञान के (जन) अभ्यास संबंधी विधियों को मजबूती प्रदान करना।
4. फोकसित विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार के माध्यम से राजनैतिक विनियोजन एवं सामाजिक अंतर्वेशन को सुनिश्चित करना तथा अनिश्चितता के प्रचलित स्तरों में जन आकांक्षाओं के अनुरूप निर्णय लेने की चुनौतियों को पहचानते हुए निर्णय लेने की प्रक्रिया में जनता एवं प्रजातांत्रिक प्रक्रमों में सहक्रिया लाने के तरीकों को पहचानना।
5. स्थानीय संदर्भों के अनुरूप देश/संस्कृति – विशिष्ट संदर्भ में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार के विकास का निदान करना।
6. 'जिन तक पहुंचना सबसे कठिन हो' उनको समझना, ऐसे सहभागियों को प्रक्रम में शामिल करने के तरीके निकालना और इसके लिए उन क्षमताओं को मान्यता देना जो उनमें विद्यमान हैं।
7. राजनैतिक कार्य सूची में अधिक स्थान पाने के लिए विज्ञान एवं विकास के परिप्रेक्ष्यों का संश्लेषण करना।
8. 'समावेशन' को एक ''सामूहिक पहचान'' के रूप में उजागर करना, समावेशन के संदर्भ में वैज्ञानिक ज्ञान और मान्यता के बीच के अंतर को पहचानना तथा सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह कि कुछ संदर्भों में जब ''जनता शामिल होना नहीं चाहती हो'' तो इससे उत्पन्न चुनौतियों का सामना करना और ऐसे सामाजिक समावेशन के प्राचलों को परिभाषित करना।
9. जनता को 'जोख़िम अभिशासन' के लिए तैयार करना और जोख़िम/मूल्य संघर्षों का शमन करना, विशेषकर, उस समय जब मौसम एवं पर्यावरणी प्रणाली में विषमता बढ़ रही हो।
10. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार के अपेक्षित प्रभावों तथा लक्ष्यों से संबंधित रिपोर्टों की लगातार कम गुणवत्ता के कारण उठी समस्याओं को पहचानते हुए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार के प्रभावों के सूचक विकसित करना।

सर्वाधिक प्रमुख उद्देश्य यह है कि चयनित विकल्प के प्रति विश्वास/समझ में वृद्धि हो, ''हम अभी कहां हैं और आगे कैसे बढ़ना है'' यह जानने की योग्यता बढ़े और सहकर्मियों को बेहतर संचार में सहायता प्राप्त हो। सम्मेलन का मुख्य विषय ''सामाजिक समावेशन एवं राजनैतिक अभियोजन के लिए विज्ञान संचार'' वैज्ञानिक दृष्टिकोण संबंधी भारतीय संविधान के परिप्रेक्ष्य और हाल ही की एस टी आइ नीति 2013 के माध्यम से की गई उसकी पहल के अनुरूप मालूम पड़ता है। भारत की पहलों में लक्ष्यों, प्रयासों, साधनों और तकनीकों तथा सफलता/चुनौतियों के सूचकों के ढांचे को मजबूत करने के लिए उपर्युक्त दस प्रमुख क्षेत्रों को उपयुक्त रूप से समाहित किया जाना चाहिए। यह निम्नलिखित के विकास के लिए भी प्रासंगिक हो जाता है:

1. ''विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार की पद्धतियां एवं प्रभाव: एक भारतीय परिप्रेक्ष्य'' विषय पर एक सार–संकलन। यह भारत के प्रयासों का अनुभवजन्य प्रमाण, अपूर्ण कार्यों की तथा प्रभावों के आदर्शीकरण हेतु स्थान विशिष्ट प्रयास की समझ प्रदर्शित करने के लिए आवश्यक है। यह विचित्र बात है कि इस प्रकार का कोई सार–संकलन अभी तक नहीं किया गया है। यह आशा की जा सकती है कि इससे विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार के क्षेत्र में एक समान चुनौतियों का सामना कर रहे कई देश अत्यंत आवश्यक अकादमीय एवं क्रिया–संबद्ध कार्यक्रम स्थापित करके परस्पर लाभांवित हो सकेंगे।
2. ''केंद्रित विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार के लिए क्षमता निर्माण'' संबंधी एक पंचवर्षीय कार्यक्रम, विशेषकर, माध्यमिक स्तर पर सेवा–दौरान कर्मचारियों के लिए प्राथमिकता के आधार पर। इससे उनकी अंतर्जात क्षमताओं को तेजी से विकसित किया जा सकेगा और वे अपने मिशन के अनुरूप अविलंब परिणाम प्रस्तुत कर सकेंगे।
3. ऐसे संचार–कर्मियों के समुदाय का निर्माण जिनकी विशेषज्ञता जन–अभियोजन, दोनों यानी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी लोकप्रियकरण तथा कार्य–मूलक लक्ष्यों को मजबूत बना सकती हैं। इससे नीतियों, योजनाओं, कार्यक्रमों और परियोजनाओं के लिए लगातार निवेश प्राप्त करने में सहायता मिलेगी।

ई–मेल : r.gopichandran@vigyanprasar.gov.in

(अनुवाद: रामशरण दास) ■

संपादक	:	आर. गोपीचन्द्रन
संयुक्त संपादक	:	रिन्टू नाथ
मुद्रण	:	मनीष मोहन गोरे एवं प्रदीप कुमार
भाषा संपादन	:	देवेंद्र मेवाड़ी
पत्र व्यवहार का पता	:	विज्ञान प्रसार, सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110 016 दूरभाष : 011-26967532; फैक्स : 0120-2404437 ई-मेल : dream@vigyanprasar.gov.in वेबसाइट : http://www.vigyanprasar.gov.in

''*ड्रीम 2047*'' में प्रकाशित लेखों/प्रलेखों में व्यक्त लेखकों के कथनों, मतों व सुझावों के लिए विज्ञान प्रसार किसी भी रूप में उत्तरदाई नहीं है।

''*ड्रीम 2047*'' में प्रकाशित लेखों के अंश, सौजन्य/साभार के साथ पुनर्प्रकाशित/उद्धृत किए जा सकते हैं बशर्ते वे पत्र-पत्रिकाएं निःशुल्क वितरित की जा रही हों जिनमें पुनर्प्रकाशन किया जा रहा है।

विज्ञान प्रसार के लिए डॉ. सुबोध महंती द्वारा सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110 016 से प्रकाशित तथा उन्हीं की ओर से अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स, प्रा.लि., ओखला औद्योगिकी क्षेत्र, फेस-II, नई दिल्ली-110 020 द्वारा मुद्रित। फोन : 011-26388830-32

नाभिकीय विखंडन के पचहत्तर वर्ष

एम. एस. एस. मूर्ती
ई–मेल : imurthy@hotmail.com

चार सौ से अधिक नाभिकीय शक्ति रिऐक्टर सारे ब्रह्मांड में घरों को रोशन करने व उद्योगों के पहिए चलाने; हज़ारों विकिरण चिकित्सा मशीनों से कैंसर रोगियों को एक नया जीवन देने; रोगों का पता लगाने के नए तरीके जो कि अन्यथा संभव नहीं थे; मैड (MAD) नाभिकीय हथियारों का एक जबरदस्त भंडार तैयार करने... यह सूची बढ़ती ही जाएगी। एक खोज जिसने इन्हें और कई अन्य प्रौद्योगिकियों को संभव बनाया यानी यूरेनियम नाभिक के विखंडन की खोज ने 22 दिसंबर 2013 को 75 वर्ष पूरे किए हैं। इस खोज का रास्ता न तो छोटा था और न ही यह घटनावश हुई थी। बल्कि, इसके लिए निरंतर मेहनत, प्रायोगिक तकनीकों में दक्षता और पारंपरिक सोच से हट कर कुछ नया करने की आवश्यकता पड़ी।

आधुनिक कीमियागरी

इस खोज की जड़ें आधुनिक भौतिकी के महान वैज्ञानिक लार्ड रदरफोर्ड से जुड़ी हैं। 19वीं शताब्दी के अंत व 20वीं शताब्दी की शुरुआत में उन्होंने न केवल डाल्टन के परमाणु अविभाज्यता सिद्धांत को अंतिम चरण तक पहुंचाया, अपितु लीक से हटकर प्रयोग किए जिनमें एक तत्व दूसरे प्रकार के तत्व में बदल गया। परिणामस्वरूप कीमियागरी का आधुनिक रूप प्रकट हुआ। उदाहरण के लिए उन्होंने अल्फ़ा कणों की एक किरण (हीलियम नाभिक) नाइट्रोजन परमाणु से टकराई ताकि ऑक्सीजन परमाणु बन सकें:

$$^{14}N + {}^{4}He = {}^{17}O + {}^{1}p$$

नाइट्रोजन नाभिक ने एक अल्फ़ा कण अवशोषित किया और उसके बाद एक प्रोटॉन खोकर स्वतः ही ऑक्सीजन नाभिक बन गया। अपरिवर्तित तत्वों वाली रासायनिक अभिक्रियाओं के विपरीत इन्हें 'नाभिकीय अभिक्रियाएं' अथवा 'न्यूक्लीय तत्वांतरण' कहा गया।

बाद में अपने नए डिजाइन किए गए कण त्वरकों का प्रयोग करते हुए अर्नेस्ट वाल्टन और जॉन कॉकरोफ्ट ने नाभिकीय तत्वांतरणों की एक श्रृंखला उत्पन्न करने के लिए अनेक तत्वों को लक्ष्य बना कर उनसे टकराने के लिए आवेशित कणों को अत्यधिक ऊर्जित किया।

इन सभी आरंभिक तत्वांतरण प्रयोगों की दो सामान्य विशेषताएं यह थीं कि लक्षित तत्व आवर्त सारणी में आम तौर पर अपेक्षाकृत हल्के तत्व होते थे। जबकि, तत्वांतरित तत्व प्राकृतिक रूप से स्थायी तत्व होता था, जो आवर्त सारणी में लक्षित तत्व से बिल्कुल अगला तत्व होता था। टकराने वाले कणों के धन आवेश के कारण इस प्रकार की अभिक्रियाएं भारी तत्वों में परिवर्तन नहीं ला सकीं। इन तत्वों के नाभिक का उच्च धन आवेश टकराने वाले कणों को प्रतिकर्षित करता था और नाभिक में घुसने से रोकता था।

न्यूट्रॉन के द्वारा खोज

फिर न्यूट्रॉनों का पता लगा। जर्मनी के वाल्टर बाथ एवं हर्बर्ट बेकर तथा फ्रांस में जोलीअट–क्यूरी द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलते हुए इंग्लैंड के जेम्स चाडविक ने रेडियम के अल्फ़ा कणों को बारीक पिसे हुए बेरिलियम से टकराते हुए अत्यधिक वेधनीय विकिरण की खोज की। उन्होंने प्रस्तावित किया कि विकिरणों से ही उदासीन आवेश (शून्य) तथा प्रोटॉन के लगभग समान भार के कणों की उत्पत्ति हुई है, जिसे उन्होंने न्यूट्रॉन कहा।

इडा नोड्डेक, पहली महिला थी जिन्होंने कहा कि यूरेनियम नाभिक को न्यूट्रॉन के साथ बमबारी करके तोड़ा जा सकता है।

इटली के वैज्ञानिक एनरिको फ़र्मी ने तत्वांतरित प्रयोगों में न्यूट्रॉन के लाभ को शीघ्र ही भांप लिया। उन्होंने एक कांच अथवा धातु के कैप्सूल में मजबूती से बंद किए गए रेडियम और बेरिलियम के बारीक पिसे हुए पाउडर के मिश्रण का न्यूट्रॉन स्रोत के रूप में प्रयोग किया। उन्होंने यह भी खोजा कि अगर न्यूट्रॉन स्रोत को एक पैराफिन ब्लॉक में दबा कर रखा जाए तो न्यूट्रॉन धीमे हो जाएंगे और तत्वांतरण प्रदर्शित करने में और अधिक प्रभावी हो जाएंगे।

फ़र्मी और उसके साथियों ने आवर्त सारणी के सभी तत्वों को प्रायोगिक रूप से किरणित किया। अधिकांश मामलों में लक्षित नाभिक धीमे न्यूट्रॉन पकड़ कर रेडियोधर्मी आइसोटोप बन गए (जोलीओट एवं फ्रेडरिक क्यूरी द्वारा पूर्व में खोजी गई कृत्रिम रेडियोऐक्टिवता की तरह), जो बीटा कण उत्सर्जन के द्वारा क्षय हो कर आवर्त सारणी में एक उच्चतर स्थायी तत्व बन गया। वे विशेषतः यह जानने में रूचि रखते थे कि यदि आवर्त सारणी में सबसे भारी व प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले तत्व 'यूरेनियम' का न्यूट्रॉन के साथ किरणन किया जाए, तो इसके क्या परिणाम होंगे। क्या ये 'ट्रांसयूरेनियम तत्व' पैदा करेंगे?

यूरेनियम का धीमे न्यूट्रॉनों के साथ किरणन करके फ़र्मी और उनके सहयोगियों ने चार रेडियोऐक्टिव उत्पादों की खोज की। रेडियोऐक्टिव उत्पादों के क्षय की विशेषताओं का अध्ययन करने के बाद उनमें तीन यूरेनियम के आइसोटोप पाए गए (क्योंकि तब केवल तीन ही आइसोटोप ज्ञात थे) और चौथे को गलती से एक ट्रांसयूरेनियम तत्व मान लिया गया जिसकी परमाणु संख्या 93 थी। परंतु इसका कोई रासायनिक प्रमाण नहीं था और कोई भी विश्वास नहीं कर रहा था। यहां तक कि यह भी सुझाया गया कि चौथा तत्व यूरेनियम के एक क्षय उत्पाद 'प्रोटैक्टीनियम' का एक आइसोटोप था।

जर्मन रसायनज्ञ इडा नोड्डेक के विचार इससे भिन्न थे। उन्होंने लिखा "यह विश्वसनीय है कि जब न्यूट्रॉन को भारी नाभिकों से टकराया जाता है तो ये बड़े–बड़े टुकड़ों में टूट सकते हैं, जो कि अनिवार्यतः ज्ञात तत्वों के आइसोटोप होते हैं लेकिन किरणित तत्वों के पड़ोसी नहीं होते।" फिर भी न्यूट्रॉन को अवशोषित कर यूरेनियम नाभिक का हल्के तत्वों के रूप में टूटना उस समय कल्पना से परे था। प्रत्येक व्यक्ति यूरेनियम से आगे के तत्वों के बारे में सोच रहा था। इडा ने भी अपने अनुमान को कोई सैद्धांतिक आधार प्रदान नहीं किया। अतः उनकी टिप्पणियों को अधिकांशतः अनदेखा कर दिया गया।

लगभग इसी दौरान आइरीन क्यूरी और पॉल सैविच नामक फ्रांसीसी वैज्ञानिकों ने यूरेनियम का न्यूट्रॉन किरणन किया और आवर्त सारणी में यूरेनियम से ऊपर नहीं, बल्कि नीचे के तत्वों यानी थोरियम एवं एक्टिनियम के रूप में कुछ उत्पादों की पहचान की। उन्होंने 3.5 घंटे के अर्धजीवन वाले एक रेडियोऐक्टिव उत्पाद को भी पहचाना जो कि ऐक्टिनियम के बजाए एक दुर्लभ मृदा प्रतीत होता था। यह लैंथेनम के साथ अवक्षेपित हुआ, किसी संदेहास्पद ट्रांसयूरेनियम तत्व के साथ नहीं। लेकिन, इसके रासायनिक गुणधर्म लैंथेनम के समान ही थे। यह तो एक पहेली बन गई, क्योंकि लैंथेनम (परमाणु सं. 57 और परमाणु भार 139) आवर्त सारणी में भारी होने के बजाए एक औसत भार वाला तत्व है।

कैसर विल्हेल्म इंस्टिट्यूट ऑफ़ केमिस्ट्री, बर्लिन (जर्मनी) में कार्यरत ओटो हॉन का इंग्लैंड में लार्ड

लिसे माइटनर और ओटो हॉन अपनी प्रयोगशाला में

रामसे के अधीन रेडियोकेमिस्ट्री में एक लंबा कॅरियर रहा। उन्होंने रेडियोऐक्टिव पदार्थों की सूक्ष्म मात्राओं को शुद्ध और अलग करने की संवेदनशील रासायनिक विधियां विकसित की थीं। उन्होंने सन् 1917 में अपने भौतिकीविद सहकर्मी लिसे माइटनर के साथ मिलकर प्रोटैक्टिनियम के एक आइसोटोप की खोज की थी। चूंकि फ़र्मी के प्रयोगों में तैयार उत्पादों में से एक यानी प्रोटैक्टिनियम का एक आइसोटोप लग रहा था, इसलिए स्वाभाविक रूप से इसने उनका ध्यान आकर्षित किया। इसलिए उन्होंने फ़र्मी के प्रयोग दोहराए। सन् 1934 और 1938 के बीच उन्होंने न्यूट्रॉन से यूरेनियम की बमबारी के फलस्वरूप कम से कम 10 रेडियोऐक्टिव उत्पादों की खोज की। इनमें से चार तत्वों की (गलती से पुनः) ट्रांसयूरेनियम तत्व के रूप में पहचान की गई, जिनके परमाणु क्रमांक 93 से 96 थे।

फ्रिट्ज स्ट्रासमान

सन् 1930 के अंत में जर्मनी में राजनीतिक उथल–पुथल का माहौल था। एडोल्फ़ हिटलर ने सत्ता हथिया ली थी और नाज़ियों का बोलबाला था। लिसे माइटनर के पूर्वज यहूदी थे। इसलिए माइटनर के लिए कैसर विल्हेल्म इंस्टिट्यूट में काम करना असंभव हो गया और उन्हें जर्मनी छोड़ना पड़ा। वे स्वीडन में रहने लगीं और नोबेल इंस्टिट्यूट ऑफ़ फिजिक्स, स्टॉकहोम में एक अनुसंधान पद पर कार्यग्रहण किया। फिर भी वहां रहते हुए उन्होंने ओटो हॉन के साथ पत्र–व्यवहार बनाए रखा और उनके साथ अपने संयुक्त पर परामर्श देती रहीं।

हॉन ने एक युवा वैज्ञानिक फ्रिट्ज स्ट्रासमान के साथ मिलकर न्यूट्रॉन से यूरेनियम की बमबारी पर शोध कार्य जारी रखा और बेरियम जैसी विशेषताओं वाले एक अन्य रेडियोऐक्टिव उत्पाद की खोज की। फिर भी उस समय यूरेनियम के न्यूट्रॉन के साथ किरणन से परमाणु क्रमांक 56 वाले एक तत्व 'बेरियम' का बनना कल्पना से परे था। चूंकि रेडियम और बेरियम आवर्त सारणी में समूह–2 तत्वों से संबंध रखते हैं और इनकी विशेषताएं भी समान हैं, इसलिए हॉन और स्ट्रासमान ने इन नए उत्पादों को रेडियम के आइसोटोप माना। इस प्रकार रेडियम आइसोटोप को अलग करने के लिए बेरियम को वाहक के रूप में प्रयोग किया गया। अंतिम विश्लेषण में रेडियोऐक्टिवता को वाहक बेरियम से पृथक करने के लिए मिश्रण का आंशिक क्रिस्टलीकरण किया गया ताकि विशेषताएं पता लग सकें। लेकिन उनके प्रयत्नों के बावजूद दोनों अलग नहीं हो सके। पृथक्करण की कई अन्य तकनीकें भी असफल रहीं, भले ही ये तकनीकें बेरियम और रेडियम आइसोटोप के पृथक्करण के लिए प्रसिद्ध थीं। इसलिए उनको निष्कर्ष निकालना पड़ा कि रेडियोऐक्टिवता का जो संदेह हो रहा था, वह बेरियम का एक रेडियोऐक्टिव आइसोटोप था। यानी बेरियम यूरेनियम पर न्यूट्रॉनों की बमबारी से बना। फिर भी वे इसके भौतिक आधार को लेकर निश्चित नहीं थे। बेरियम का परमाणु द्रव्यमान यूरेनियम से 40 प्रतिशत कम था। रेडियोऐक्टिवता अथवा तत्वांतरण के प्रयोगों की पूर्व में ज्ञात कोई भी विधि उत्पाद नाभिक के द्रव्यमान में इतने अधिक अंतर का कारण नहीं हो सकती।

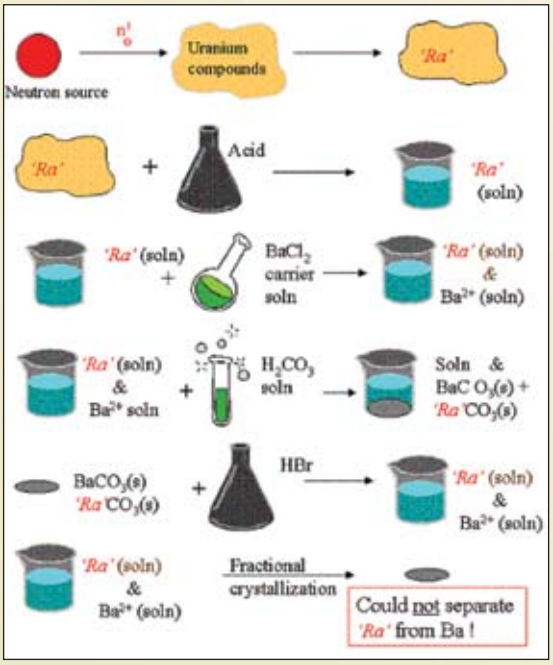

हॉन और फ्रिट्स स्ट्रासमान ने वाहक बेरियम से संदिग्ध रेडियो घटक को अलग करने के लिए कई रासायनिक तरीकों को अपनाया

तरल बूंद मॉडल

22 दिसंबर 1938 को हॉन और स्ट्रासमान ने जर्मन विज्ञान पत्रिका *नेचरविसेंशाफन* को प्रकाशन के लिए एक पांडुलिपि भेजी जिसमें उन्होंने बताया कि यूरेनियम पर न्यूट्रॉन की बमबारी के परिणामस्वरूप बने उत्पाद के रूप में बेरियम खोज लिया है। लगभग इसी समय हॉन ने लिसे माइटनर को एक पत्र भेजा, जिसमें रासायनिक पृथक्करण की तकनीकों के परिणाम का वर्णन किया गया था, जिससे यह सिद्ध हो गया कि कुछ उत्पाद बेरियम तत्व के आइसोटोप थे। तो, क्या यूरेनियम नाभिक में न्यूट्रॉन की बमबारी के कारण प्रस्फोट हो रहा था? इसके बारे में वे निश्चित नहीं थे।

जिस समय माइटनर को पत्र मिला, उस समय उनके चचेरे भाई ओटो रोबर्ट फ्रिश भी क्रिसमस के लिए वहां आए हुए थे। वे स्वयं एक भौतिकी विशेषज्ञ थे और कोपेनहेगेन में नील्स बोर के साथ काम कर रहे थे। उन्होंने हॉन के पत्र को इन उलझन पैदा करने वाले परिणामों का स्पष्टीकरण जानने के लिए ध्यान से पढ़ा। शुरुआत में फ्रिश को रासायनिक तकनीकों व निष्कर्षों पर संदेह था। यद्यपि माइटनर को हॉन के एक योग्य रेडियोकेमिस्ट होने तथा बेरियम से अज्ञात उत्पाद अलग करने के लिए अपनाई गई उनकी विधियों पर विश्वास था, परंतु कोई बेरियम की उपस्थिति को स्पष्ट करे तो कैसे करे?

ओटो रोबर्ट फ्रिश, जिन्होंने प्रयोगात्मक विखंडन प्रक्रिया का प्रदर्शन किया

कुछ पहले रूस के भौतिकीविद जॉर्ज गैमो और नील्स बोर ने यह प्रस्तावित किया कि यूरेनियम जैसे भारी तत्वों के नाभिक, जिनमें काफी संख्या में प्रोटॉन और न्यूट्रॉन होते हैं, हल्के तत्वों के नाभिकों की अपेक्षा कम मजबूती से बंधे हुए होते हैं। अतः ये एक तरल बूंद की भांति व्यवहार कर सकते हैं। माइटनर ने सोचा कि जिस प्रकार एक तरल बूंद हिलाने पर छोटी बूंद में टूट सकती है, उसी प्रकार यूरेनियम नाभिक भी एक

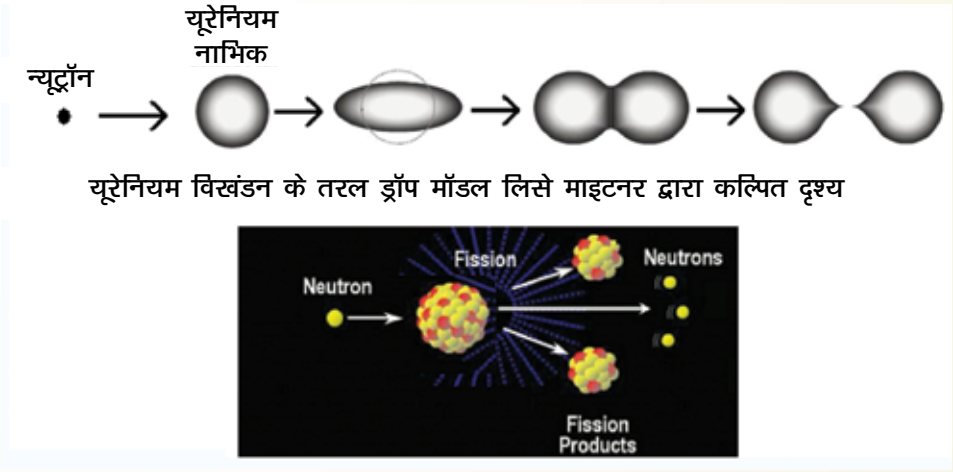

यूरेनियम विखंडन के तरल ड्रॉप मॉडल लिसे माइटनर द्वारा कल्पित दृश्य

न्यूट्रॉन अवशोषित करने पर हिलेगा, अधिक कमजोर होगा, लंबा होगा और मध्य से सिकुड़ना शुरू कर देगा और आखिर में लगभग समान द्रव्यमान के दो भागों में टूट जाएगा और इसकी परमाणु संख्या आवर्त सारणी के लगभग मध्य में होगी। उन्होंने अनुमान लगाया कि इसके परिणामस्वरूप दो नाभिक एक–दूसरे को प्रतिकर्षित करते हैं और 200 मिलियन इलेक्ट्रॉन वोल्ट (MeV) की कुल गतिक ऊर्जा प्राप्त कर लेते हैं। रेडियोऐक्टिव क्षय (अधिकतम कुछेक MeV) और रासायनिक अभिक्रियाओं (कुछ इलेक्ट्रॉन वोल्ट) में उत्सर्जित ऊर्जा की तुलना में यह ऊर्जा की एक बहुत बड़ी मात्रा है।

यह ऊर्जा कहां से आती है? माइटनर के पास इसका उत्तर था। उन्होंने पता लगाया कि यूरेनियम नाभिक के टूटने से बने उत्पादों का कुल भार मूल यूरेनियम नाभिक और न्यूट्रॉन के कुल भर से थोड़ा कम होगा। आइंस्टाइन के ऊर्जा और द्रव्यमान की तुल्यता के सिद्धांत ($E=mc^2$) के अनुसार उत्सर्जित ऊर्जा के कारण यह सूक्ष्म अंतर पैदा हो सकता है।

इस प्रकार हॉन एवं स्ट्रासमान के परिणामों की माइटनर और फ्रिश सही तरह से व्याख्या कर सके, जिसके अनुसार यूरेनियम नाभिक (परमाणु क्रमांक Z=92) एक धीमे न्यूट्रॉन को अवशोषित करके दो हल्के टुकड़ों में टूट जाता है। उनमें से एक यदि बेरियम (Z=56) का आइसोटोप था, तो दूसरा क्रिप्टन (Z=36) था, जिससे इनकी कुल परमाणु संख्या 92 हो गई इस प्रक्रिया में 200 मिलियन इलैक्ट्रॉन वोल्ट (MeV) ऊर्जा भी मुक्त होती है। बेरियम और क्रिप्टन ही अकेले टुकड़े नहीं हैं। आतंरिक बनावट और कुछ सीमा तक संयोग पर निर्भरता के कारण यह आवर्त सारणी के मध्य में तत्वों का कोई भी युग्म हो सकता है जिसकी कुल परमाणु संख्या 92 के बराबर हो, जैसे $_{36}Kr/_{56}Ba$, $_{37}Rb/_{55}Cs$, $_{38}Sr/_{54}Xe$ आदि। चूंकि वे यूरेनियम नाभिक से अधिक न्यूट्रॉन (सामान्यतः आवर्त सारणी के मध्य में स्थिर तत्वों की अपेक्षा अधिक) प्राप्त करते हैं, इसलिए उनका द्रव्यमान 90 से 100 और 130 से 140 के बीच हो सकता है। अतः ये अत्यधिक अस्थिर होते हैं और एक या एक से अधिक चरणों में बीटा कणों को मुक्त करते हुए स्थिर आइसोटोप

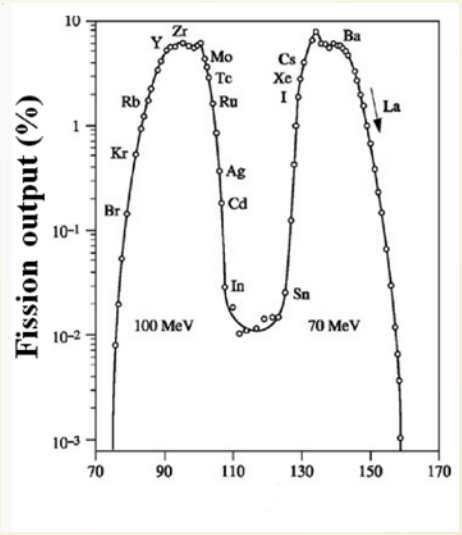

विखंडन उत्पाद का द्रव्यमान

में चले जाते हैं। इस प्रकार एक बहुत बड़ी मात्रा में रेडियोऐक्टिव तत्व पैदा होंगे। अतः पिछले प्रयोगों में न्यूट्रॉन के यूरेनियम से टकराने के बाद उत्पन्न कई रेडियोऐक्टिव उत्पाद जिनको गलती से या तो ट्रांसयूरेनियम तत्व या फिर यूरेनियम के क्षय उत्पाद कहा गया था, जबकि वास्तव में वे यूरेनियम नाभिक के टूटने से उत्पन्न रेडियोऐक्टिव प्रजातियां थीं। इस तरह क्यूरी और सैविच के प्रयोगों में लैंथेनम की उपस्थिति को भी स्पष्ट किया जा सका।

इस तरह एक नए प्रकार का नाभिकीय तत्वांतरण प्राप्त हुआ, जो तब तक ज्ञात अन्य सभी से भिन्न था। जीवविज्ञान में कोशिका विभाजन से इसकी एकरूपता के कारण फ्रिश ने इसे 'नाभिकीय विखंडन' की संज्ञा दी।

16 जनवरी 1939 में माइटनर और फ्रिश ने अपने तर्कों को तराशा और '*नेचर*' शोधपत्रिका में प्रकाशन हेतु एक शोधपत्र भेजा। फ्रिश वापस अपनी प्रयोगशाला में गए और विखंडन से संबंधित अंतिम भौतिक प्रमाण प्रदान करने के लिए प्रयोग संचालित करने लगे। उन्होंने यूरेनियम के साथ एक आयनीकरण चैंबर लगाया, इसे बाहर रखे एक न्यूट्रॉन स्रोत के साथ किरणित किया और प्रतिक्षेप विखंडन टुकड़ों से पैदा हुए भारी आयनीकरण स्पंदों का रिकॉर्ड तैयार किया।

एक श्रृंखला अभिक्रिया

जब फ्रिश ने हॉन और स्ट्रासमान के निष्कर्षों की चर्चा बोर के साथ की, तो वे हैरान रह गए। बोर ने प्रिंस्टन, अमेरिका के सम्मेलन में यूरेनियम विखंडन का समाचार सुनाया। यह खोज इतनी अप्रत्याशित और उत्तेजित करने वाली थी कि इसने तुरंत वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया, जिसके परिणामस्वरूप अमेरिका और यूरोप में बहुत बड़ी संख्या में वैज्ञानिक शोधपत्र प्रकाशित हुए, जिनमें विखंडन प्रक्रिया की पुष्टि की गई और इसकी कई विशेषताएं प्रदर्शित की गईं।

यद्यपि रेडियोऐक्टिव क्षय और रासायनिक अभिक्रियाओं की तुलना में विखंडन अभिक्रिया में मुक्त ऊर्जा अधिक (लगभग 200 MeV) थी, लेकिन अपने आप में यह किसी प्रायोगिक कार्य के लिए काफी नहीं थी। हंगरी के भौतिक विज्ञानी लियो ज़िलार्ड ने सुझाव दिया कि यदि एक विखंडन श्रृंखला अभिक्रिया स्थापित की जाए तो विशाल मात्रा में उत्पन्न ऊर्जा को सैन्य और नागरिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। ऐसी श्रृंखला अभिक्रिया के लिए यह अपेक्षित था कि प्रत्येक यूरेनियम नाभिक के विखंडन में एक से अधिक न्यूट्रॉन उत्पन्न हों, ताकि बदले में और अधिक यूरेनियम नाभिकों में और भी अधिक विखंडन प्रेरित हो सकें, और यह क्रम चलता रहे। यद्यपि हॉन और स्ट्रासमान ने पहले ही नोट कर लिया था कि विखंडन प्रक्रिया में और अधिक न्यूट्रॉन मुक्त किए जा सकते हैं, फिर भी एफ़. जोलीओट ने सन् 1939 में प्रायोगिक रूप से स्थापित कर दिया कि औसत रूप से प्रत्येक विखंडन से लगभग 2.6 न्यूट्रॉन पैदा होते हैं।

लियो जिलार्ड जिन्होंने नाभिक विखंडन श्रृंखला प्रतिक्रिया के बारे में सोचा

नियंत्रित विखंडन श्रृंखला अभिक्रिया (1942) पर आधारित प्रथम रिऐक्टर के निर्माण (शिकागो पाइल–1 के नाम से प्रसिद्ध) के उपरांत न्यू मेक्सिको, अमेरिका में सर्वप्रथम (जुलाई

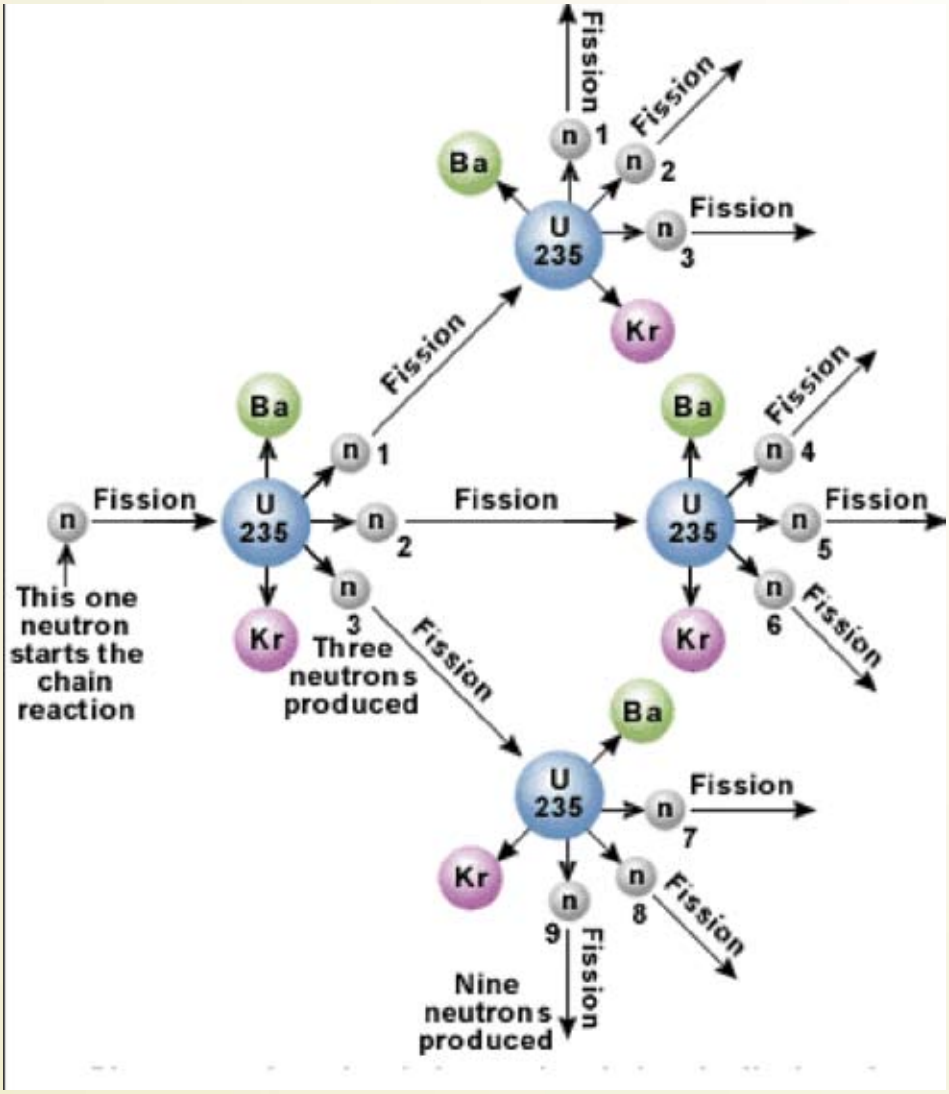

यूरेनियम–235 नाभिक के साथ विखंडन श्रृंखला प्रतिक्रिया। यह हर समय Ba/kr युग्म नहीं होना चाहिए।

1945 में) परमाणु बम का परीक्षण, यूरेनियम–235 और प्लूटोनियम–239 बमों से हिरोशिमा और नागासाकी का विनाश, शीत युद्ध और परमाणु हथियारों की दौड़ आदि अब इतिहास का हिस्सा बन चुके हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध के अंत में ओटो हॉन पर परमाणु बम बनाने के लिए जर्मनी की नाभिकीय ऊर्जा परियोजना में कार्य करने का संदेह किया जा रहा था। सन् 1945 में ओटो हॉन और जर्मनी के 9 अन्य प्रमुख भौतिक वैज्ञानिकों को मित्र राष्ट्रों की सेनाओं द्वारा हिरासत में ले लिया गया और 3 जुलाई 1945 से 3 जनवरी 1946 तक कैंब्रिज, इंग्लैंड के पास फार्म हाल में रखा गया। वहां उन्हें हिरोशिमा और नागासाकी पर बम गिराने की दुखद घटना का पता चला। हॉन को बहुत निराशा हुई कि उनकी खोज लाखों निर्दोष जापानियों की मौत और कष्ट का कारण बनी।

नवंबर 1945 में उनकी हिरासत के दौरान रॉयल स्वीडिश एकेडमी ऑफ़ साइंसेज ने घोषणा की कि ओटो हॉन को उनके 'भारी परमाणु नाभिक के विखंडन की खोज के लिए' रसायन विज्ञान के सन् 1944 के नोबेल पुरस्कार से नवाजा गया है। वे उस वर्ष के समारोह में भाग नहीं ले पाए, परंतु दिसंबर 1946 के समारोह में उन्होंने भाग लिया।

कई नोबेल पुरस्कारों की तरह इस पुरस्कार को लेकर भी विवाद हुए। अधिकतर ने महसूस किया कि माइटनर को ओटो हॉन के साथ यह पुरस्कार दिया जाना चाहिए था। हॉन के आरंभिक निष्कर्ष में सावधानी भरे शब्द थे क्योंकि यह विचार, कि यूरेनियम को तोड़ा जा सकता है, किसी को भी नहीं सूझा था (इडा नोड्डेक को छोड़ कर, जिसे नजरंदाज कर दिया गया था)। उस समय तक न्यूट्रॉन की बमबारी से उत्पन्न उत्पादों को परमाणु संख्या में मूल परमाणु के नजदीक माना जाता था। हॉन ने स्वयं स्पष्ट किया, "हमारी अत्यधिक सावधानी का मुख्य कारण यह तथ्य था कि रसायनज्ञों के रूप में हम भौतिकी में क्रांतिकारी खोज की घोषणा करने से हिचकिचा रहे थे।" लिसे माइटनर ने उनकी खोज के आवश्यक सैद्धांतिक स्पष्टीकरण दिए। इसके बारे में उन्होंने स्वयं लिखा, "इसमें कोई संदेह नहीं है कि हॉन निश्चित रूप से रसायन विज्ञान में नोबेल पुरस्कार के हकदार थे। परंतु मेरा विश्वास है कि ओटो रोबर्ट फ्रिश और मैंने यूरेनियम विखंडन की प्रक्रिया के स्पष्टीकरण, अर्थात यह कैसे होता है, और यह इतनी अधिक ऊर्जा कैसे उत्पन्न करता है, आदि में कोई कम अहम योगदान नहीं दिया जो हॉन से काफी परे था। इसी कारण मैं इसे उचित नहीं समझती कि समाचारपत्रों में मुझे हॉन का 'सहकर्मी' कहा गया, जबकि वे तो स्ट्रासमान थे।"

हॉन को उनकी खोज के लिए कई सम्मान प्राप्त हुए। उनमें भारतीय विज्ञान अकादमी (बैंगलोर) और नेशनल ऐकेडमी ऑफ़ साइंसेज, इंडिया (इलाहाबाद) में मानद सदस्यता भी शामिल है।

डॉ. एम.एस.एस. मूर्ती, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, मुंबई से वरिष्ठ वैज्ञानिक के रूप में 1997 में सेवानिवृत्त हुए। यह एक लोकप्रिय विज्ञान लेखक हैं और इन्होंने कुछ पुस्तकें भी लिखीं हैं।

(अनुवादकः रूपेंद्र शर्मा)

विज्ञान प्रसार वेबसाइट

विज्ञान प्रसार के प्रकाशनों को ऑन लाइन प्राप्त करने के लिए बेवसाइट के डिजिटल लाइब्रेरी भाग पर रजिस्टर करें। आप विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संबंधी प्रश्नों एवं उनके हल के लिए विचार–विमर्श फोरम का भी उपयोग कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी आधारित वीडियो, विज्ञान रेडियो धारावाहिक, ऑन लाइन विज्ञान क्विज, गतिविधि प्रयोगों एवं अन्य कार्यक्रमों को जानने के लिए देखें www.vigyanprasar.gov.in

जैविक हथियार – एक वास्तविक खतरा

मोनिका कौल
ई–मेल : drmkoul@gmail.com

आतंकी संगठन काफी पहले से तथाकथित दुश्मन इलाकों में सामाजिक–राजनैतिक तंत्र को नष्ट करने के इरादे से जीवों का इस्तेमाल युद्ध के एजेंट के रुप में करते रहे हैं। इस तरह की आतंकी रणनीति को जैव आतंकवाद कहा जाता है। जैव आतंकवाद का आशय किसी आतंकी देश द्वारा किसी तथाकथित दुश्मन इलाके के पर्यावरण में नुकसानदायक विषैले, रोगजनक जीवों या इनके उत्पादों को जानबूझकर छोड़े जाने से है जिससे उस तथाकथित दुश्मन इलाके में भय, आतंक और सामाजिक अस्थिरता के साथ–साथ राजनैतिक बेचैनी का माहौल पैदा हो जाए। जैव आतंकवाद अभी उभर रहा है और संगठित रुप ले रहा है जिससे यह आतंकवाद के किसी अन्य खतरे से ज्यादा खतरनाक बनता जा रहा है। यह हर उस देश के लिए वास्तविक जोखिम बनता जा रहा है जिसे अपनी स्वतंत्रता से प्यार है।

कोई भी घातक एवं हानिकारक जीव/रोगाणु या उसका उत्पाद जैसे कि जैव–सक्रिय पदार्थ, गौण मेटाबोलाइट, फेरोमोन, हॉर्मोन या द्वितीयक मेसेंजर जिसे पारंपरिक हथियारों या नागरिक साधनों के जरिए या फिर प्राकृतिक रोगवाहकों जैसे कीटों के द्वारा छोड़ा जा सके, जैव आतंकवाद का एक संभावित एजेंट है। किसी भी जीव समूह जैसे कि बैक्टीरिया, वायरस, प्रायन, प्रोटोज़ोअन और फफूंदियों से संबंधित तेजी से फैलने वाले घातक रोगाणु परमाणु या पारंपरिक हथियार तकनीकी रूप से ज्यादा खतरनाक बन सकते हैं क्योंकि इन्हें भौगोलिक सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता और यह अनिश्चित समय तक फैलते रह सकते हैं। जैविक हथियार विभिन्न विधियों जैसे कि एयरोसोल, विशिष्ट रक्त–पोषी कीटों या खाद्य और जल संदूषकों के जरिए फैलाया जा सकता है। इसलिए इन्हें गरीबों का परमाणु बम भी कहा जाता है। यह हथियार बेहद प्रभावी, छोड़ने में आसान एवं स्वयं–पोषी होते हैं। इनका इस्तेमाल जान बूझ कर ऐसी बीमारियों को फैलाने के लिए किया जा सकता है जिनसे आम लोगों में आतंक और दहशत फैल जाए। दुनिया भर में जैवविज्ञान एवं जैवतकनीकी के त्वरित विस्तार को जैव आतंकवाद के नजरिए से भी देखा जाना चाहिए।

जैव आतंकवाद किसी नए या अनूठे किस्म की आतंकी रणनीति नहीं है। कई राष्ट्रों और संगठनों ने इसका इस्तेमाल प्राचीन समय से ही किया है। हां, जैविक हथियारों के सामरिक इस्तेमाल, उनकी वितरण प्रणाली और इसके लिए इस्तेमाल किए जाने वाले जीवों की विविधता पहले से काफी बढ़ गई है। जैव आतंकवाद का इतिहास रोमन सभ्यता से शुरू होता है। इसका पहला इस्तेमाल टार्टर सैनिकों पर दर्ज किया गया है जब क्रीमियाई शहर काफा की घेराबंदी के दौरान उन्हें प्लेग के रोगाणुओं का शिकार बनाया गया। इसी तरह चौदहवीं शताब्दी में ब्यूबोनिक प्लेग का इस्तेमाल दुश्मन देश के शहरों में घुसपैठ के लिए किया जाता था। इससे जहां एक ओर आम नागरिकों में भय पैदा किया जा सकता था और उम्मीद की जाती थी कि वे शहर से पलायन कर जाएंगे, वहीं दूसरी ओर इसके इस्तेमाल से रक्षात्मक सेनाओं को नष्ट भी किया जा सकता था। पंद्रहवीं शताब्दी में दक्षिणी अमेरिकी और मूल अमेरिकी सेनाओं को हराने के लिए चेचक वायरस का दूषित पोशाकों पर इस्तेमाल किया गया, जबकि पहले विश्व युद्ध के दौरान ऐंथ्रैक्स के इस्तेमाल की कोशिश पशु आबादी को निशाना बना कर की गई।

सन् 1995 में जापान के एक छोटे आतंकी गुट ने विषैली नर्व गैस का इस्तेमाल करके जापान में टोक्यो शहर के एक भूमिगत रेल स्टेशन पर आतंकवादी हमला किया जिसमें 12 लोग मारे गए और 5,000 से ज्यादा प्रभावित हुए। जापान की आपातकालीन सेवाओं की त्वरित कार्रवाई से ज्यादा लोगों की

जैविक युद्ध के सामान्य एजेंट

जीवाणु (बैक्टीरियल) एजेंट	**बेसिलस एंथ्रेसिस (ऐंथ्रैक्स), फ्रांसिसेला टुलारेनसिस (टुलारेमिया), ब्रुसेला सुइस (ब्रुसेलोसिस), कोग्ज़िएला बुरनेटी (क्यू फीवर)**
विषाणु (वायरल) एजेंट	**वेनेज़ुएलन इक्वाइन एंसेफेलाइटिस वायरस (वीईई), येलो फीवर वायरस**
विषाक्त पदार्थ	**बोटुलिनम टॉक्सिन, स्टेफाइलोकोक्कल एंटेरोटॉक्सिन**
वनस्पति–रोधी एजेंट	**पाइरिकुलारिया ओराइज़ी (धान स्फोट रोग), पक्सीनिया ट्रिटिकाइ (गेहूं का गेरुई रोग)**

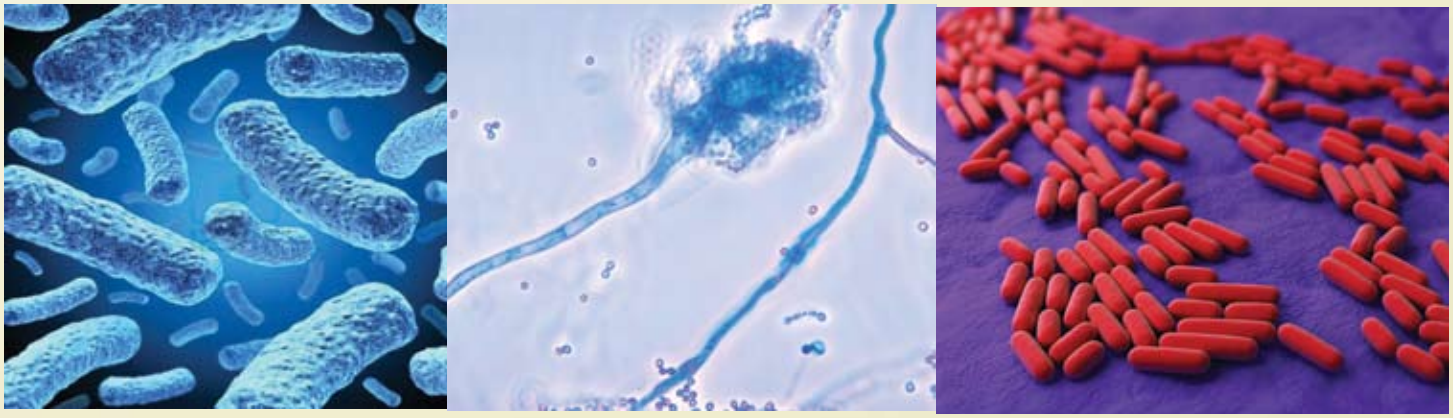

जीवों के रूप में जैविक हथियार बैक्टीरिया, एस्पर्जिलियस, बेसिलस एंथ्रेक्स

जानें जाने से बच गईं। रूस की हमेशा से एक आक्रामक जैव आतंकवाद रणनीति रही है। शीत युद्ध के दौरान तत्कालीन सोवियत संघ पर यह आरोप लगाया जाता रहा कि वह कोबरा सांपों और बिच्छुओं के विष बनाने वाले जीनों को गैर–हानिकारक बैक्टीरिया के डीएनए में मिलाने का प्रयास कर रहा है। ऐसे जीवों को अगर एयरोसोल के माध्यम से छोड़ा जाए तो हजारों लोग पक्षाघात के शिकार हो सकते हैं। सन् 1980 की दशक के दौरान इराक ने जैविक हथियारों को विकसित करने और इन्हें जमा करने की पुरजोर कोशिश की। अमेरिका में सन् 2001 में जैव आतंकवादी हमला हुआ जब संक्रामक ऐंथ्रैक्स से दूषित पत्र मीडिया कार्यालयों को और अमेरिकी कांग्रेस को भेजे गए।

कई विश्लेषक मानते हैं कि संवर्धित एवं आनुवंशिक रुप से परिवर्तित जीव किसी भी मौजूदा हथियार प्रणाली से ज्यादा खतरनाक हैं, जिनमें मानव जनसंख्या पर परमाणु हथियारों से भी ज्यादा व्यापक एवं विनाशकारी प्रभाव डालने की क्षमता है। रिकॉम्बिनेंट डीएनए प्रौद्योगिकी ने सूक्ष्मजीवों की ऐसी परिवर्तित प्रजातियों की संभावना बढ़ा दी है जो वातावरण में छोड़े जाने पर सामूहिक विनाश की स्थिति पैदा कर सकते हैं। इस बात की संभावना है कि आनुवंशिक इंजीनियरी से ऐसा जैविक हथियार बनाया जा सकता है जो अनूठा होगा और उसके खिलाफ कोई एक खास वैक्सीन ही कारगर होगी। मामूली आण्विक परिवर्तन से अधिक विषाक्त, त्वरित कार्य करने वाला और स्थिर जैविक एजेंट बनाना संभव हो सकता है। जैविक युद्ध के क्षेत्र में संभावित विकास के इन दो उदाहरणों से जैविक हथियारों की उपयोगिता काफी बढ़ सकती है, खासकर युद्ध के मैदान में। इस बात की अटकलें भी हैं कि किसी खास आनुवंशिक बनावट को निशाना बनाने वाला विषाक्त एजेंट भी बनाया जा सकता है जिससे हमलावर आयु, लिंग, नस्ल और व्यावहारिक समूह के आधार पर अपने शिकार का चुनाव कर सकता है। विशेषज्ञों का मानना है कि प्राकृतिक रोगाणुओं के डीएनए और प्रोटीन सीक्वेंसिंग डाटा की आसान उपलब्धता के साथ–साथ ट्रांसजेनिक और ट्रांसफॉर्मेशन प्रौद्योगिकी में तरक्की के कारण भयावह मंसूबे रखने वाले लोगों द्वारा जैविक हथियारों के विकास को बढ़ावा मिल सकता है।

आर्थिक गड़बड़ी फैलाने के इरादे से राष्ट्रीय कृषि एवं पशु उद्योग के खिलाफ जैव हथियारों का इस्तेमाल जैवविविधता के लिए संभावित तौर पर एक गंभीर खतरा है। ऐसे जैविक हथियार न सिर्फ घरेलू पौधों और पशुओं की आनुवंशिक विविधता पर सीधा प्रभाव डालते हैं बल्कि पौधों और पशुओं की आबादी पर इनके प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव की आशंका से इंकार नहीं किया जा सकता। खासकर कई विकसित

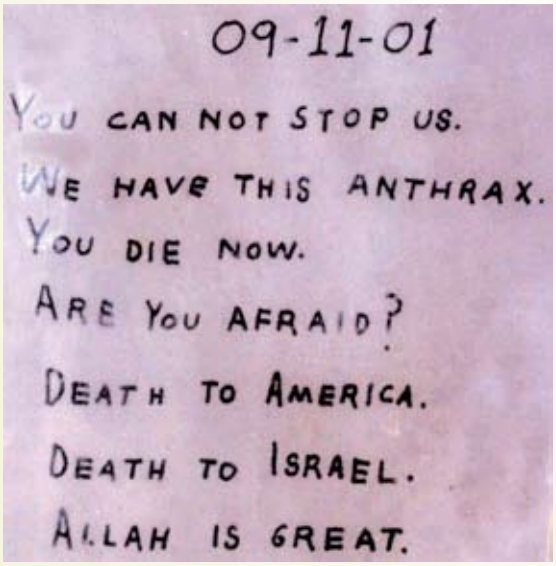

देशों में कृषि जीनोटाइप–विशिष्ट हथियारों की चपेट में आ सकती है। आमतौर पर एक बड़े क्षेत्रफल में एक ही प्रकार के पौधे को उगाया जाता है, साथ ही पशुपालन में एक ही नस्ल के आनुवंशिक रुप से अंतः प्रजनित जानवरों को उच्च घनत्व वाले इलाके में रखा जाता है। कृषि की ऐसी प्रथाओं से आनुवंशिक परिवर्तनशीलता कम होती है और आबादी को किसी भी बीमारी के प्रति संवेदनशील बनाती है।

हालांकि जैव आतंकवाद के लिए जैविक हथियारों का उत्पादन एक सस्ती एवं किफायती प्रौद्योगिकी है, लेकिन इस खतरे का मुकाबला करना काफी खर्चीला साबित होगा। मानव–रचित या प्राकृतिक संक्रामक प्रकोप वैश्विक अर्थव्यवस्था को तहस–नहस कर सकता है। जैविक हथियारों की मारक क्षमता पारंपरिक युद्ध एजेंटों के मुकाबले काफी ज्यादा है। एक ग्राम विषाक्त पदार्थ लाखों लोगों को मार सकता है। बोटुलिनम जीव–विष की विशुद्ध मात्रा से भरा एक मिसाइल हथियार 3,700 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को प्रभावित कर सकता है जो कि किसी पारंपरिक हथियार से 16 गुणा अधिक है। विभिन्न देशों से मिली रिपोर्टों के अनुसार सभी देशों को इस खतरे से निपटने की रणनीति तैयार करने के लिए बड़ी रकम खर्च करनी होगी।

वक्त की जरूरत है जागरूकता, जागृति एवं खतरे की गंभीरता को समझना। सरकारी एजेंसियां, गैर–सरकारी संगठन एवं दुनिया भर की प्रयोगशालाएं इस खतरे का सामना करने के लिए तैयार हो रही हैं। इन्हें पहचानने के नए तरीके खोजे जा रहे हैं। बायोइंफॉर्मैटिक्स और नैनोटेक्नोलॉजी से कई अहम प्रश्नों के सुराग मिल सकते हैं और इनमें पहचान और निगरानी प्रणाली के लिए संभावित कुशल समाधान भी हैं। नीति निर्धारकों, जीव वैज्ञानिकों, सैन्य बलों और रक्षा प्रयोगशालाओं के समन्वित प्रयासों से जैव आतंकवाद के खतरों को कम किया जा सकता है। इसके अलावा हमें जैविक हथियारों के खतरे का मुकाबला करने के उद्देश्य से विशिष्ट अनुसंधान कार्यक्रमों को विकसित करना होगा और इसके लिए धन उपलब्ध करना होगा, बजाय यह सोचा जाए कि किसी जादू की छड़ी से यह काम हो जाएगा।

मोनिका कौल, असिस्टेंट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग, हंस राज महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली - 110007

(अनुवादकः विवेकानंद ओझा) ■

संपादक के नाम पत्र

एस.एन. बोस को भूले

लेखक के रूप में डॉ. बी. एन. धवन (ड्रीम 2047, मई 2014) के पत्र के संबंध में मेरी ओर से अनजाने में हुई चूक को मैं स्वीकार करता हूं और इस पर मुझे खेद है। मैं यह ध्यान दिलाना चाहता हूं कि एस. एन. बोस के उत्कृष्ट कार्यों पर ड्रीम 2047 में पहले ही कई लेख प्रकाशित हो चुके हैं। मैं विशेष रूप से यहां अपने दो लेखोंः 1) "बोसॉन्सः दी बर्ड देट फ्लॉक एंड सिंग टू गेदर" (ड्रीम 2047, जनवरी 2002); और 2) "इट इज ए हिग्स बोसॉन!"(ड्रीम 2047, सितंबर 2012) के बारे में ध्यान दिलाता हूं कि इन में से पहला लेख एस.एन. बोस के जीवन एवं कार्यों, बोस–आइंस्टीन सांख्यिकी, बोसॉन्स, और वर्तमान शताब्दी के आरंभ तक की प्रगति का एकमौलिक लेखन है। मैं स्वीकार करता हूं कि यह काफी पुराना है, लेकिन दूसरा लेख काफी नवीनतम जानकारियों से परिपूर्ण है और यह एस. एन. बोस एवं उनके कार्यों का संक्षिप्तवृत्त प्रस्तुत करता है, जिसमें लार्ज हैड्रान कोलाईडर में 2012 में खोजे गए मानक मॉडल एवं हिग्स बोसॉन पर विशेष जोर दिया गया है। ये दोनों लेख विज्ञान प्रसार की वेबसाइट पर उपलब्ध हैं।

विनय बी. कांबले
16, आंगन अपार्टमेंट्स
नजदीक एल. जे. कॉमर्स कॉलेज,
वस्त्रपुर, अहमदाबाद 380015

आर्द्र भूमि और जलपक्षियों का संरक्षणः एक पारिस्थितिक समाधान

वैद्यनाथन कान्नन एस. कान्नन

पृथ्वी की सतह का 6.4 प्रतिशत भाग आर्द्रभूमि है जबकि यह भारत की कुल भूमि के 3.4 प्रतिशत भाग में फैली हुई है। 130 सेंटीमीटर वार्षिक वर्षा एवं विविध स्थलाकृतियों और जलवायु परिस्थितियों के कारण भारत में ये विभिन्न प्रकार की आर्द्रभूमियों के प्राकृतिक आवास बने रहते हैं। भारत में प्राकृतिक आर्द्रभूमियां हिमालय की ऊंचाइयों पर स्थित झीलों, मुख्य नदी प्रणालियों के बाढ़ आने वाले मैदानों, शुष्क एवं अर्धशुष्क इलाकों की आर्द्रभूमियों, तटीय आर्द्रभूमियों जैसे लैगून, बैकवाटर तथा नदीमुखों, सदाबहार दलदलों, प्रवाल शैलमालाओं और समुद्री आर्द्रभूमि के रुप में मौज़ूद हैं। भारत असाधारण विविधताओं वाला राष्ट्र है जो कि एशिया में दूसरा एवं विश्व का सातवां सबसे बड़ा देश है। जलीय प्राकृतिक आवासों के संसाधन बृहद हैं किंतु इनके बारे में जानकारी कम ही है। इन्हें सामूहिक रुप से आर्द्रभूमि कहा जा सकता है।

आंध्र प्रदेश के चितलईकोना में पूर्वी घाटों से बहती एक सदाबहार नदी (साभारः वी कान्नन)

आर्द्रभूमि की परिभाषा है *'भौमिक एवं जलीय प्रणाली के बीच की परिवर्ती भूमि जिसमें भौमिक जलस्तर सतह के करीब है या फिर जहां भूमि छिछले पानी से ढकी रहती है।'* प्राकृतिक आवास एवं पारिस्थितिकी के हिसाब से आर्द्रभूमियां पृथ्वी की सतह के मात्र लगभग 6 प्रतिशत भाग में फैले होने के बावजूद इससे कहीं ज्यादा उत्पाद एवं सेवाएं प्रदान करती हैं। आर्द्रभूमि एक अलग पारिस्थितिकी तंत्र है जिसकी अपनी विशिष्ट वनस्पतियां हैं जिनका जल से संतृप्त भूमि के लिए स्थाई रूप से या मौसमी रूप में अनुकूलन हो गया है। इनमें अद्वितीय जैविक समुदाय होते हैं जिनमें ऐसे पेड़-पौधे और जीव-जंतु पाए जाते हैं जो उथले और अक्सर गतिशील जल की परिस्थितियों के लिए अनुकूलित हैं। ये सबसे समृद्ध पारिस्थितिक प्रणालियों में से एक हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधे और जीव-जंतु पाए जाते हैं। ये कई प्रकार की पारिस्थितिकी सेवाएं भी प्रदान करते हैं जैसे कि शुष्क अवधि में जल-अवधारण (जिससे भू-जल स्तर ऊंचा एवं लगभग स्थिर रहता है), बाढ़ के दौरान इसके प्रकोप को कम करना, पोषक तत्वों से बहुल मिट्टी का आवाह क्षेत्र बनना इत्यादि। आर्द्रभूमियां साफ जल के साथ-साथ मछली पकड़ने, कृषि, मनोरंजन एवं पर्यटन के अवसर उपलब्ध कराना आदि लाभ प्रदान करती हैं। इनका जैवविविधता को बनाए रखने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है क्योंकि ये जल पक्षियों को प्राकृतिक आवास और मछलियों तथा अकशेरूकी जीवों के लिए प्रजननभूमि प्रदान करती हैं। ये जल पक्षियों की कई प्रजातियों को सूखे के समय में आश्रय देती हैं, खासकर उनके लिए जो मौसमी आर्द्रभूमियों जैसे दलदलों में पाई जाती हैं।

पारंपरिक तौर पर आर्द्रभूमि को बंजरभूमि, मच्छरों के पनपने की जगह और भूमि सुधार तथा कचरा डालने की जगह माना जाता है। कई आर्द्रभूमियां जल निकास, कचरे की भराई एवं सफाई के कारण या तो खत्म हो चुकी हैं या फिर इनकी स्थिति काफी खराब हो गई है। इससे जहां आर्द्रभूमि की उपलब्धता एवं गुणवत्ता कम हुई है वहीं जल पक्षियों के लिए आर्द्रभूमि की उपलब्धता भी कम हो गई है। हालांकि, हाल के वर्षों में आर्द्रभूमियों से मिलने वाली सेवाओं की ओर वैश्विक स्तर पर संरक्षण हेतु ध्यान आकर्षित हुआ है और इन्हें संरक्षण के लिए अहम क्षेत्र के रुप में पहचाना गया है।

आर्द्रभूमियां अद्वितीय जैविक समुदाय का खजाना हैं जिनमें उथले और आमतौर पर गतिशील जल की परिस्थितियों के लिए अनुकूलित विविध प्रकार के पेड़-पौधे तथा जीव-जंतु पाए जाते हैं। आर्द्रभूमियां सबसे समृद्ध पारिस्थितिक तंत्रों में शामिल हैं। पारिस्थितिक तंत्र का तात्पर्य एक ऐसी जैविक प्रणाली से है जो कि अपने बढ़ते भौतिक एवं रासायनिक घटकों के कारण एक कार्यात्मक एवं आत्मनिर्भर इकाई बन जाता है। दुनियाभर की आर्द्रभूमियों के महत्त्व पर पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है क्योंकि ये कई तरीकों से पर्यावरण को स्वस्थ बनाए रखने में योगदान देती हैं। ये सूखे की अवधि में जल को बचाए रखती हैं जिससे भूजल का स्तर ऊंचा और कमोबेश स्थिर बना रहता है। जबकि,

चेन्नई में मानव बस्तियों के निकट एक आर्द्रभूमि (साभारः एस रामानाथन)

ब्लैक–टेल्ड गोडविट जैसी प्रजातियों के लिए कृषि आर्द्रभूमि प्राकृतिक आहार भूमि का काम करती है। (साभारः वी कान्नन)

बाढ़ के दौरान ये इसके प्रकोप को कम करते हैं और बहते हुए कणों और उनके साथ बंधे पोषक तत्वों को बचा लेती हैं।

जलपक्षी

जलपक्षी का अर्थ चिड़ियों की ऐसी प्रजातियों से है जो अपने जीवन-चक्र की कुछ अवधि जैसे भोजन, प्रजनन, घोंसला बनाने या निर्मोचन (मार्ल्टिंग) को पूरा करने के लिए जलीय आवास पर निर्भर करती हैं। जलपक्षी ताजे पानी से लेकर समुद्री आवासों तक में रहने के लिए अनुकूलित होते हैं और उनका अनुकूलन उनके पर्यावरण पर निर्भर रहता है। सामान्य अनुकूलनों में झिल्लीदार पैर, पानी के भीतर से भोजन प्राप्त करने लायक चोंच तथा पैर और शिकार पकड़ने के लिए पानी के भीतर गोता लगाने की क्षमता शामिल हैं। सामान्य जलपक्षी हैं: बत्तख, हंस, पनडुब्बी, मुर्गाबी, स्टॉर्क, हेरोन, बगुला, आइबिस, स्पूनबिल, जलकौवा, पेलिकन, फ्लेमिंगो, सारस, जलकुक्कुट, कूट, जलमुर्गी और किंगफिशर शामिल हैं। भारत में पाई जाने वाली पक्षियों की 310 आर्द्रभूमि प्रजातियों में से 130 (42 प्रतिशत) प्रवासी और 173 अप्रवासी हैं। 173 अप्रवासी प्रजातियों में से 53 स्थाई अप्रवासी हैं, 38 आंशिक अप्रवासी और शीतकालीन प्रवासी प्रजातियां हैं जबकि जल की परिस्थितियों के अनुसार 50 प्रजातियां मौसमी रूप से स्थानीय प्रवास करती हैं।

जलपक्षी आर्द्रभूमि पारिस्थितिक तंत्र का महत्त्वपूर्ण घटक होने के अलावा स्थानीय समुदायों में अहम सामाजिक एवं सांस्कृतिक भूमिका निभाते हैं। इन पक्षियों का पूरे मानव इतिहास में वर्णन किया गया है। ये आहार के स्रोत, अलंकरण, लोक साहित्य और टोटकों के रुप में संस्कृति का हिस्सा रहे हैं। आज भी कई जलपक्षी सांस्कृतिक पहचान, संरक्षण संस्थाओं, पर्यावरण कार्यक्रमों या स्थानीय संस्कृति के प्रतीक माने जाते हैं। ये लंबे समय से देशभर के पक्षी प्रेमियों का वैज्ञानिक एवं मनोरंजन उद्देश्यों के लिए ध्यान आकर्षित करते आए हैं या फिर आजीविका में सहयोग करते रहे हैं जैसे समुद्री पक्षियों का समूह मछुआरों को अपने शिकार के पास ले जाता है।

अपनी बनावट या झुंड में देखने में मनमोहक शानदार, जलपक्षी एक अद्वितीय प्राकृतिक आवास का प्रतिनिधित्व करने के साथ-साथ प्राकृतिक दुनिया की खूबसूरती के सर्वोत्तम उदाहरण हैं, जैसे मुंबई में फ्लैमिंगो का दिखाई देना। वे आंतरिक, मानव एवं पारिस्थितिकी के हिसाब से बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधन हैं। इतनी विशेषताओं के बावजूद, या फिर

पैसिफिक गोल्डन प्लोवर जैसी प्रवासी प्रजातियों के लिए आर्द्रभूमि पड़ाव का काम करते हैं (साभारः वी कान्नन)

इसी वजह से, जलपक्षियों से मानव का व्यवहार अच्छा नहीं रहा है। कुछ जलपक्षी अभी भी मानव गतिविधियों के कारण खतरे में हैं। जलपक्षियों के समूह द्वारा घोंसला या बसेरा बनाते समय जो शोर होता है, उसके कारण कई लोग इन्हें नापसंद करते हैं, क्योंकि यह शोर-शराबा शहरी एवं उपनगरीय इलाकों के सौंदर्यमूलक मानकों से मेल नहीं खाता। जलपक्षियों के प्रति आम जन का यह दुराव दीर्घकालीन खतरा बन सकता है।

संकटग्रस्त जलपक्षियों के विश्लेषण से पता चलता है कि ऐसी 242 प्रजातियों में से 82 प्रजातियां एशिया में पाई जाती हैं जिनमें से 39 भारत में हैं। पेंटेड स्टॉर्क *(माइक्टेरिया ल्युकोसेफाला)*, डार्टर *(एनहिंगा मेलानोगास्टर)*, स्पॉट बिल्ड पेलिकन (पेलेकेनस फिलिपेनिंसिस), लेसर एड्जुटेंट (लेप्टोटिलोस जावानिकस) और इंडियन स्किमर (रिंकॉप्स एल्बिकोलिस) जो पहले दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया में बहुतायत में पाए जाते थे, अब इनकी संख्या में तेजी से गिरावट आ रही है। पिंक-हेडेड डक (रोडोनेसा कैरियोफाइलेसिया), जो कि दुनियाभर में संकटग्रस्त माना जाता है, भारत से शायद गायब हो गया है। इसके अलावा, जलपक्षियों के प्राकृतिक आवास प्राकृतिक एवं मानवीय कारणों जैसे तटीय विकास, तटीय कटाव, औद्योगिक क्षेत्रों के आर्द्रभूमि में मिलने की वजह से संकट में पड़ गए हैं।

संरक्षण के लिए पारिस्थितिकी का दृष्टिकोण

जीववैज्ञानिक आधार पर आर्द्रभूमि पोषक तत्वों से भरपूर तलछट तथा वानस्पतिक पदार्थ नदियों में छोड़ने में अहम भूमिका निभाती है जिससे मछलियों को आहार और कई अन्य प्राकृतिक आवासों में रहने वाले प्राणियों को वहां प्रवास एवं प्रजनन की सुविधा मिलती है। आर्द्रभूमियां नदियों और इनके आसपास के पारिस्थितिकी तंत्र को जीवंत बनाकर इनमें मानव की प्रतिकूल गतिविधियों का संतुलन करती हैं। कई अन्य प्राकृतिक आवासों के विपरीत, आर्द्रभूमि अन्य पारिस्थितिकी तंत्रों को सीधे तौर पर फायदा पहुंचाते हैं। अपनी कई सफाई की विशेषताओं के कारण आर्द्रभूमि की तुलना कई बार गुर्दों से की जाती है। सभी आर्द्रभूमियां अन्य बायोमों के साथ-साथ वन्यप्राणियों और मानवों के स्वास्थ्य के लिए हितकारी हैं।

आर्द्रभूमि की पोषक तत्वों को पुनःचक्रित करने की क्षमता उन्हें पूरी पृथ्वी के लिए महत्त्वपूर्ण बना देती है। कोई भी अन्य पारिस्थितिकी तंत्र इस परिवर्तन प्रक्रिया में इतना उत्पादक या

तटीय आर्द्रभूमि में मैंग्रोव (साभारः वी कान्नन)

एक स्वच्छ जलीय आर्द्रभूमि में बहार का नज़ारा (साभारः वी कान्नन)

अद्वितीय नहीं है। लेकिन, आर्द्रभूमियां दुनिया के सबसे संकटग्रस्त प्राकृतिक आवासों में से एक हैं। पूरे विश्व की तरह भारत की आर्द्रभूमियों पर भी मानवजनित दबाव बढ़ता जा रहा है। तेजी से बढ़ती मानव आबादी, भूमि उपयोग में बड़े पैमाने पर बदलाव, बेलगाम विकास परियोजनाएं और जलग्रहण क्षेत्रों का अनुचित इस्तेमाल इन सबसे आर्द्रभूमियों की गुणवत्ता में काफी कमी आई है। कई आर्द्रभूमियां औद्योगिक, कृषि एवं अन्य शहरी विकास गतिविधियों की भेंट चढ़ गई हैं।

मानव गतिविधियों ने जल गुणवत्ता, मात्रा एवं बहाव दर में बदलाव, प्रदूषकों की मात्रा बढ़ा कर और नई गैर-घरेलू प्रजातियों को शामिल करके प्रजाति संघटन में बदलाव कर आर्द्रभूमि ह्रास किया है। जब जलीय परिस्थिति भूजल स्तर को संतृप्त कर देती है अथवा हर साल कुछ समय तक मिट्टी को जलमग्न कर देती है तो आर्द्रभूमि बनने लगती है। जल परिस्थिति में बदलाव मिट्टी और वनस्पतियों तथा प्राणि समुदायों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर सकता है। हालांकि आर्द्रभूमि भूमि की सतह के जल से प्रदूषकों का अवशोषण कर सकती है, लेकिन ऐसा करने की इनकी क्षमता की एक सीमा होती है। आर्द्रभूमि ह्रास के लिए जिम्मेदार प्राथमिक प्रदूषक हैं तलछट, उर्वरक, मानव मल, जंतु अवशिष्ट, कीटनाशक तथा भारी धातुएं।

कई एशियाई जलपक्षी प्रजातियां जो आर्द्रभूमि पर सीधे या अप्रत्यक्ष रुप से निर्भर हैं, वे भी खतरे में हैं। अध्ययनों से पता चला है कि 42 प्रतिशत जलपक्षियों की जनसंख्या न सिर्फ भारत में बल्कि पूरे विश्व में भयावह ढंग से गायब हो रही है। प्रवासी प्रजातियों के लिए आहार और रहने का प्राकृतिक आवास काफी अहम होता है। इनमें से कई प्रजातियां आर्द्रभूमि की तलाश में हजारों किलोमीटर दूर तक प्रवास करती हैं। कई पार-विषुवतीय (ट्रांस-इक्वेटोरियल) प्रवासी प्रजातियों के लिए आर्द्रभूमि की महत्ता को देखते हुए कई आर्द्रभूमियों को रामसर सम्मेलन के तहत अंतर्राष्ट्रीय रूप से महत्त्वपूर्ण माना गया है।

मनुष्य नदियों को संभावित मछली पकड़ने की जगह के रूप में देखते हैं (साभारः वी कान्नन)

आर्द्रभूमि जलपक्षियों के लिए आहार और घोंसले बनाने की जगह होती है। लेकिन, इसके विनाश के कारण इन्हें लगातार घट रहे संसाधनों का सामना करना पड़ रहा है। आर्द्रभूमि के किनारे और तटवर्ती इलाकों में आर्द्रभूमि वनस्पतियों के विनाश के कारण प्राकृतिक आवास तथा परभक्षियों से बचाव की कमी से जलपक्षियों के प्रजनन की सफलता कम हुई है। इसलिए यह जरूरी है कि जो जलपक्षी आर्द्रभूमि का उपयोग करते हैं अथवा इसकी ओर आकर्षित होते हैं, उनके लिए समुचित प्राकृतिक आवास उपलब्ध कराने हेतु जलपक्षियों की प्राकृतिक आवश्यकताओं को समझना जरूरी है। जलपक्षी और अन्य प्रवासी पक्षी प्रकृति के सबसे शानदार संसाधनों में हैं। ऐसे सभी लोग जो प्रकृति की महत्ता को समझते हैं, उनके लिए इनका संरक्षण एक नाजुक और चुनौतीपूर्ण काम है।

आर्द्रभूमियां कई कारणों से महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि ये जल-संभरण यानी किसी स्पंज और फिल्टर की तरह काम करती हैं और सतह के जल को साफ करती हैं। ये जलवायु परिवर्तन से लेकर तटीय संरक्षण तक कई वैश्विक प्रक्रियाओं में अहम भूमिका निभाती हैं। आर्द्रभूमि ऐसे कई जीव-जंतुओं का प्राकृतिक आवास हैं जो मानव के लिए मनोरंजन गतिविधियों के अवसर मुहैया कराती है जैसे बर्डवॉचिंग, शिकार, मछली पकड़ना और हाईकिंग। हर साल 2 फरवरी को विश्व आर्द्रभूमि दिवस मनाने के अलावा हमें इनके अस्तित्व को बनाए रखना होगा जिससे जलपक्षियों को बचाया जा सके और मनुष्यों को भी फायदा हो। आर्द्रभूमि ऐसे असली चौराहे हैं जहां प्रकृति और मानव सभ्यता सैकड़ों पीढ़ियो से मिलती रही है।

अब जलपक्षियों को आर्द्रभूमि की गुणवत्ता का सूचक माना जाने लगा है जिनसे वैज्ञानिकों और नीति निर्धारकों को क्षेत्रीय जैवविविधता तथा प्राकृतिक आवास बहाली के प्रयासों के आकलन में मदद मिलती है। अनेक खतरों और संरक्षण प्रबंधन की आवश्यकताओं के कारण संकटग्रस्त जलपक्षियों की सुरक्षा विशेष रूप से संरक्षण की एक मुश्किल चुनौती है। ऐसी गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित करना जरूरी है जिनसे जलपक्षियों के प्राकृतिक आवास यानी आर्द्रभूमि के प्रति खतरे कम होते हों। इससे जलपक्षियों की स्थिति बेहतर होगी।

वैद्यनाथन कान्नन एक वाइल्डलाइफ जीव वैज्ञानिक और अनुसंधानकर्ता हैं। इन्होंने बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी एवं भारत में अन्य गैर-सरकारी संस्थाओं के साथ काम किया है। Email: kannan.vaithianathan@gmail.com

एस रामानाथन प्रकृति छायाचित्रण में रूचि रखते हैं और विभिन्न वनस्पतियों तथा जीव-जंतुओं के व्यवहार के बारे में ज्ञान अर्जित करते रहते हैं।

(अनुवादकः विवेकानंद ओझा) ■

अवसोडियम रक्तता के खतरे

डॉ. निरूपा श्रीनिवासन
ई–मेल : srinivasan.nirupa@yahoo.in

वर्तमान युग में हम सभी आम प्रयोग में लाए जाने वाले नमक की मात्रा के प्रति काफी सचेत रहते हैं, क्योंकि रक्त में सोडियम का स्तर अधिक होने के कारण रक्तदाब बढ़ जाता है जो कि अपने आप में अनेक समस्याओं का घर है। इसलिए हम सामान्य नमक की मात्रा के प्रयोग को कम करने का प्रयत्न करते हैं। एक, ऐसी स्थिति जिसके बारे में लोगों को कम पता है उसे हाइपोनैट्रीमिया यानी अवसोडियम रक्तता अर्थात रक्त में सोडियम की कमी कहा जाता है। यह स्थिति हमारे जीवन के लिए एक बड़ा खतरा बन सकती है।

रक्त में सोडियम का स्तर अपसामान्य रूप से कम हो जाना हाइपोनैट्रीमिया कहलाता है। शरीर में तरल संतुलन बनाए रखने, रक्तदाब नियमित करने और तंत्रिका तंत्र के सामान्य कार्यों सहित हमारे शरीर के कई अन्य कार्यों के लिए सोडियम एक अनिवार्य तत्व होता है। सोडियम आयन एक विद्युत्-अपघट्य (इलेक्ट्रोलाइट) है और यह हमारी कोशिकाओं के भीतर और उनके इर्द-गिर्द जल की मात्रा को नियंत्रित करने में सहायता करता है।

हाइपोनैट्रीमिया इलेक्ट्रोलाइट की गड़बड़ी से होती है। ऐसी स्थिति में प्लाज्मा में सोडियम आयन की सांद्रता सामान्य से कम हो जाती है। रक्त में सामान्य सीरम स्तर 135 और 145 मिलीमोल प्रति लीटर होता है। लेकिन, सोडियम स्तर 125 मिलीमोल प्रति लीटर से कम हो जाने पर यह स्थिति गंभीर हो जाती है।

सोडियम आयन एक धनायन (धनात्मक आयन) होता है और यह अंतरालीय स्थान से कोशिका को पार नहीं कर सकता है, क्योंकि आवेशित सोडियम आयन एक बड़ी ध्रुवीय संरचना का निर्माण करते हुए, जो इतनी बड़ी होती है कि कोशिका झिल्ली के अंदर से नहीं गुजर सकती है, उनके इर्द-गिर्द 25 जल अणुओं को आकर्षित कर लेते हैं।

नैदानिक संकेत एवं लक्षण

हाइपोनैट्रीमिया के अधिकतर मरीज लक्षणरहित स्पर्शोन्मुख होते हैं, यानी उनमें इस स्थिति के लक्षण प्रदर्शित नहीं होते। जब तक सोडियम का स्तर 120 मिलीमोल प्रति लीटर से नीचे नहीं पहुंचता, तब तक ये लक्षण प्रकट ही नहीं होते हैं। हाइपोनैट्रीमिया की गंभीर स्थिति में तंत्रिका और जठरांत्र से संबंधित लक्षणों की प्रधानता होती है। जैसे-जैसे सोडियम स्तर कम होता है, दौरे और कोमा का जोखिम बढ़ता जाता है। जिन मरीजों का इलाज चल रहा हो, उनमें सांस लेने में कठिनाई का एक अन्य लक्षण भी पाया जाता है। मांसपेशियों में कमजोरी, बेचैनी, थकान, घबराहट और दौरा पड़ना इसके कुछेक गंभीर लक्षण होते हैं।

कारण

सोडियम स्तर में कमी के संभावित कारण हैं:

1) लंबे समय तक व्यायाम करना
2) लंबे समय तक पसीना आना
3) तेज उल्टी या डायरिया
4) अत्यधिक मात्रा में पानी पीने से हुई ओवरहाइड्रेशन के कारण भी ऐसा हो सकता है, क्योंकि पानी कोशिकाओं में प्रवेश करने की कोशिश करता है जिसके कारण कोशिकाएं सूजने लगती हैं। यह शोफ रोग या ईडीमा कहलाता है। जब मस्तिष्क में यह रोग होता है तो इसे मस्तिष्क शोफ कहा जाता है, जो काफी खतरनाक होता है।
5) ऐसा आहार खाना, जिसमें सोडियम की मात्रा कम हो।

जब शरीर का संपूर्ण संचित जल शरीर के संचित इलेक्ट्रोलाइट (सोडियम और पोटैशियम) से अधिक हो जाता है, तब सोडियम का स्तर कम हो जाता है। इसका तात्पर्य है कि प्लाज्मा सोडियम (रक्त में नमक का स्तर) की तुलना में जल की मात्रा अधिक है।

अधिक आयुवर्ग के वयस्क प्रायः आयु-संबंधी कारणों से हाइपोनैट्रीमिया से ग्रसित होते हैं, क्योंकि आयु शरीर द्वारा सोडियम और जल के संतुलन का समन्वय करने के तरीके को प्रभावित करती है, जैसे कि:

1) मूत्रवर्धक, अवसादरोधी और दर्द-निवारक दवाएं लेना
2) गुर्दों की कार्यप्रणाली में परिवर्तन
3) गुर्दों की विफलता
4) हृदय की विफलता
5) मूत्रवर्धन रोकने वाले हॉर्मोन की अधिकता, जो जल-धारण को बढ़ावा देता है।
6) प्रायः पेशाब कम बार आना
7) हाइपोथायरॉयडिज्म
8) एडिसन रोग (एड्रेनल ग्रंथि को प्रभावित करने वाला रोग)

संभावित जटिलताएं

गंभीर स्थिति में हाइपोनैट्रीमिया से निम्नलिखित समस्याएं हो सकती हैं:

1) चेतना में कमी, मतिभ्रम या कोमा;
2) दिमागी हर्नियेशन (खोपड़ी में उपलब्ध जल के दबाव से मस्तिष्क ऊतक गति करता है।)
3) मृत्यु

उपचार

हाइपोनैट्रीमिया को सामान्य लवण, तरल पदार्थों एवं इलेक्ट्रोलाइटों की अंतःशिरा आपूर्ति से धीरे-धीरे ठीक किया जा सकता है।

सीरम सोडियम को 24 घंटों में 8 मिली मोल प्रति लीटर से अधिक नहीं बढ़ने देना चाहिए। सोडियम स्तर में अचानक वृद्धि होने पर मस्तिष्क संबंधी गंभीर विकार पैदा हो सकते हैं।

वाहिका-संपीडन ग्राही विरोधी (वैसोप्रेसिन रिसेप्टर एंटेगोनिस्ट) कहलाने वाली दवाओं का प्रयोग किया जा सकता है। "वैपटन दवाओं" का एक नया वर्ग विकसित किया जा चुका है।

तीव्र गंभीर हाइपोनैट्रीमिया (125 मिली मोल प्रति लीटर से कम) की स्थिति में प्रायः तंत्रिका संबंधी विकारों जैसे कि दौरे पड़ने के लक्षण पैदा होने लगते हैं। चूंकि इससे दिमागी शोफ के अत्यधिक जोखिम का खतरा बना रहता है, इसलिए इसका तत्काल इलाज कराना चाहिए।

रोकथाम

जल एवं इलेक्ट्रोलाइट का संतुलन बनाए रखने से रक्त में सोडियम की कमी से बचा जा सकता है।

एथलीटों के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि वे व्यायाम के दौरान उचित मात्रा में पानी पीएं। उन्हें इलेक्ट्रोलाइट युक्त रीहाइड्रेशन (पुनर्जलयोजन) पेय पदार्थ पीने पर जोर देना चाहिए। खिलाड़ियों एवं अन्य व्यक्तियों को, जो अधिक व्यायाम करते हैं, इलेक्ट्रोलाइट युक्त तरल पदार्थ (न कि केवल पानी) पीने चाहिएं।

गंभीर हाइपोनैट्रीमिया के कारणों का अचूक निदान, रोगजनन (पैथोजेनिसिस) और चिरकालीनता (दीर्घकालीन होने की स्थिति) तथा उपचार के दौरान निगरानी रखना, इस रोग पर काबू पाने के महत्त्वपूर्ण बिंदु हैं। अधिकतम स्वास्थ्य लाभ सुनिश्चित करने के लिए रोगी की नियमित जांच अत्यधिक अनिवार्य है।

(अनुवादकः रूपेंद्र शर्मा) ■

गुदा विदर
कारण, घरेलु नुस्खे एवं उपचार

डॉ. यतीश अग्रवाल
ई–मेल : dryatish@yahoo.com

गुदा के सिरे का खिंचाव और फटन की स्थिति किसी व्यक्ति के मल के अत्यधिक कड़े होने के कारण उत्पन्न होती है। हालांकि यह फटन आमतौर पर छोटी, एक सेंटीमीटर से भी कम होती है किंतु ऐसा होने पर अत्यधिक कष्ट होने लगता है। इसका कारण है, गुदा का अत्यंत संवेदनशील होना। यह दर्द मलत्याग के समय और उसके बाद भी एक-आध घंटे तक बना रहता है। इसी स्थिति को गुदा-विदर या ऐनल फ़िशर कहते हैं।

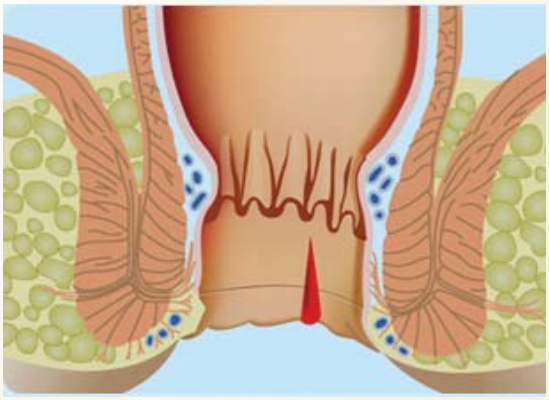

वयस्कों एवं बच्चों, दोनों में गुदा-विदर होना आम बात है। ऐसे विदर आमतौर पर गंभीर स्वरूप वाले नहीं होते किंतु तकलीफ़ और बेचैनी देने वाले जरूर होते हैं। अधिकांश लोगों में ये एक या दो सप्ताह में ठीक हो जाते हैं, उसी तरह जैसे त्वचा के छोटे-मोटे घाव भर जाते हैं। ऐसी स्थितियों में घरेलु नुस्खे अक्सर कारगर सिद्ध होते हैं जिनका लक्ष्य यह रहता है कि विदर का घाव भर जाने तक दर्द कम हो सके और मल मुलायम रहे ताकि मलत्याग में सहजता हो सके।

कई-विदर, हालांकि ऐसे भी होते हैं जिन्हें ठीक होने में लंबा समय लगता है। यदि गुदा-विदर छः सप्ताह के बाद भी ठीक न हो तो उसे जीर्ण गुदा-विदर कहा जाता है। ऐसे लगातार बने रहने वाले विदर का अनेक उपचार विधियों से प्रभावी इलाज किया जा सकता है, जिनमें गुदा की पेशियों को शिथिल करने वाले मरहम तथा सर्जरी सम्मिलित हैं।

सुस्पष्ट रोग लक्षण

गुदा-विदरों की उनके सुस्पष्ट रोग लक्षणों से सरलतापूर्वक पहचान की जा सकती है:

मल त्याग के दौरान दर्द

गुदा-विदर के कारण मलत्याग करते समय तीखा, काटने वाला या जलन भरा दर्द महसूस होता है। यह दर्द जो काफी तीव्र होता है, शौच से निवृत्त होने के बाद भी लंबे समय तक बना रहता है।

रक्तस्राव

प्रायः गुदा-विदर से थोड़ा रक्तस्राव भी हो जाता है। व्यक्ति, मलपात्र या टिश्यूपेपर में रक्त के धब्बे या कुछ बूंदें स्वयं देख पाता है। यह रक्त मल से अलग होता है। गहरे रंग का कोलतार जैसा या फिर रक्त मिश्रित मल किसी अन्य स्थिति का संकेत होता है, जैसे आंतों की शोथ या फिर कोई अन्य गंभीर रोग। इस प्रकार के रक्तस्राव की स्थिति में तुरंत चिकित्सक से संपर्क करना चाहिए।

खुजली तथा स्राव

गुदा-विदर में खुजली हो सकती है, साथ ही हल्के पीले रंग का स्राव भी निकल सकता है।

दर्द रहित घाव

कभी-कभी गुदा-विदर ऐसा भी होता है जिसमें घाव दर्द नहीं करता, बीच-बीच में रक्तस्राव होता है किंतु अन्य किसी भी प्रकार के रोगलक्षण व्यक्त नहीं होते।

कारण

गुदा-विदर गुदानाल की त्वचा में दरार पड़ जाने से हो जाते हैं। उक्त क्षति या घाव अनेक स्थितियों में हो सकते हैं:

कब्ज

कब्ज रहने पर गुदा-विदर होने की आशंका अधिक रहती है। व्यक्ति जोर लगा कर सख़्त मल का त्याग करना चाहता है। इसी प्रयास में गुदा द्वार के आस-पास की त्वचा फट जाती है।

प्रसव

महिलाओं में प्रसव के कारण भी गुदानाल को गंभीर क्षति पहुंच सकती है। दस में से एक महिला को प्रसव के दौरान ही गुदा-विदर हो जाता है। प्रसव यदि उचित तरीके से न कराया जाए तब ऐसा हो जाना आम बात है।

बार–बार दस्त

कुछ एक मामलों में गुदा-विदर 'क्रोन्स रोग' के कारण भी हो जाते हैं जो आंत्रशोथ संबंधी रोग है। इस रोग में खूनी दस्त होते हैं। उदर में पीड़ा, ज्वर, वज़न में कमी, गुदा-विदर या फिर गुदा के निकट नालवृण (फ़िस्टुला) हो जाना भी इसी रोग के दुष्प्रभाव हैं।

सीधा अभिघात (ट्रॉमा)

गुदा में अंगुली डालने (जैसा कि शारीरिक परीक्षण के दौरान किया जाता है), किसी बाहरी वस्तु को गुदा में डालने या फिर गुदा मैथुन से भी विदर हो सकता है।

प्रमुख संभावित कारक

बहुत से लोगों में कब्ज़ होने या दस्त लगने पर भी गुदा विदर होने की प्रवृत्ति नहीं देखी जाती। अतः अनेक विशेषज्ञों का मानना है कि गुदा विदरों का कोई अन्य कारण भी होना चाहिए। कुछ लोगों में, गुदा पर नियंत्रण करने वाले दो पेशीय वलयों – तथाकथित अवरोधिनियों (स्फिंक्टर्स) में अत्यधिक तनाव हो सकता है। बाहरी गुदा अवरोधिनी व्यक्ति की चेतना के नियंत्रण में रहती है किंतु आंतरिक गुदा अवरोधिनी पर ऐसा नियंत्रण संभव नहीं होता। यह पेशी सदैव दबाव या तनाव में रहती है। इस पेशी में लगातार रहने वाला यह दबाव जब बहुत बढ़ जाता है तो इस कारण विदर बन सकता है। ऐसा होने पर ऐंठन उत्पन्न हो जाती है और गुदा में रुधिर प्रवाह कम होने लगता है। एक बार गुदा में फटन हो जाने और मलत्याग के दौरान दर्द रहने से गुदा-टोन (गुदा के सिकुड़ने की प्रवृत्ति) और बढ़ जाती है। यह तीव्र बना रहने वाला दबाव विदर को ठीक होने नहीं देता। ऐसे में रोगलक्षण और बिगड़ जाते हैं और एक दुष्चक्र आरंभ हो जाता है जो विदर को और भी बिगाड़ देता है।

निदान

अधिकांश चिकित्सकों द्वारा गुदा-विदर का निदान व्यक्ति के विशिष्ट रोगलक्षणों तथा गुदा के आस-पास की त्वचा का परीक्षण करके किया जाता है। आमतौर पर चिकित्सक दोनों नितंबों को हल्के से अलग कर गुदा-विदर को देखते हैं।

चिकित्सक अंगुलियों पर दस्ताने चढ़ाकर (अंगुली द्वारा गुदा परीक्षण) या एक प्रकाशयुक्त उपकरण (ऐनोस्कोप) को प्रविष्ट करा कर विदर की जांच करते हैं, किंतु विदर के अत्यंत कष्टकर होने की स्थिति में ऐसे परीक्षण तब तक नहीं किए जाते जब तक विदर में सुधार न होने लगे। ऐनोस्कोप द्वारा परीक्षण करने से किन्हीं अन्य शारीरिक समस्याओं का निराकरण भी संभव

होता है। तत्काल परीक्षण की अनिवार्यता होने पर स्थानीय एनेस्थेसिया दिया जा सकता है।

परीक्षण से चिकित्सक यह भी जान सकता है कि कहीं कोई अन्य समस्या तो विदर का कारण नहीं है। एक से अधिक विदर होना या फिर गुदा में ऐसे स्थानों पर विदर होना जहां वे सामान्यतः नहीं होते – इस बात का संकेत करता है कि व्यक्ति आंत्रशोथ, सिफलिस, कमजोर प्रतिरक्षा प्रणाली, टी. बी., एच आइ वी संक्रमण या गुदा कैंसर से ग्रस्त हो सकता है। अधिकांश विदर गुदा की मध्य रेखा पर ऊपरी या निचले भाग में होते हैं।

उपचार के विकल्प

सरल घरेलू उपचार

अधिकांश लोगों में गुदा-विदर एकाध सप्ताह में उसी तरह ठीक हो जाते हैं जैसे त्वचा की छोटी-मोटी चोट या खरोंच। गुदा-विदर उपचार में उद्देश्य यह रहता है कि विदर में पूर्णतः स्वस्थ होने तक मल मुलायम रहे।

दर्द एवं बेचैनी से राहत

गर्म जल से स्नान

गर्म जल स्नान से गुदा को राहत मिलती है। इससे गुदा शिथिल होती है और दर्द कम होने लगता है।

सुन्न करने वाली क्रीम एवं मरहम

सीधे प्रभावित स्थान पर लगाई जाने वाली औषधि स्थानिक औषधि कहलाती है। स्थानिक एनेस्थेसिया त्वचा को संवेदनशून्य बनाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। गुदा-विदर में इसका उपयोग करने पर मलत्याग के दौरान होने वाले तीखे एवं तीव्र दर्द से राहत मिलती है।

लिडोकेन, सर्वाधिक निर्दिष्ट किया जाने वाला स्थानिक एनेस्थेसिया है। यह जैल या मरहम के रूप में उपलब्ध है। लिडोकेन का सामान्यतः एक दो सप्ताह तक ही प्रयोग किया जाता है क्योंकि इस अवधि में विदर का घाव भरना आरंभ हो जाना चाहिए। इसका उपयोग आमतौर पर मलत्याग से ठीक पहले किया जाता है। औषधि का उपयोग अल्प अवधि (पांच-सात दिन) तक ही किया जाना चाहिए। अधिक समय तक उपयोग करने पर एनेस्थेसिया गुदा के आस-पास की त्वचा में जलन उत्पन्न कर सकता है या फिर उसे संवेदनक्षम बना देता है।

स्टेरॉयड क्रीम

विदर के आस-पास अत्यधिक शोथ होने पर चिकित्सक स्टेरॉयड औषधियुक्त क्रीम या मरहम लगाने की सलाह दे सकता है। स्टेरॉयडों से जलन कम होती है। इससे विदर के आस-पास की सूजन भी घटती है। खुजली एवं दर्द में राहत मिलती है। किंतु इस औषधि का प्रयोग भी एक बार में एक सप्ताह से अधिक नहीं करना चाहिए।

प्रक्षालन

शौच के बाद गुदा को पानी से अच्छी तरह धोएं। उसे सावधानी से सुखाएं। घाव को साबुन से न धोएं क्योंकि ऐसा करने पर जलन हो सकती है। प्रक्षालन के दौरान दर्द तथा जलन से बचाव करें।

टॉयलेट पेपर

बेबी वाइप इस्तेमाल करने पर ऐल्कोहॉल युक्त या सुगंधित उत्पादों का उपयोग न करें। ऐसा करने पर तकलीफ और खुज़ली बढ़ सकती है। टॉयलेट पेपर इस्तेमाल करना हो तो मुलायम कागज चुनें और उसे गुदा के आस-पास ज़्यादा न रगड़ें।

दर्द निवारक गोलियां

पैरासिटामोल या इबुप्रोफेन जैसी दवाओं से दर्द से राहत मिल सकती है हालांकि ऐसी किसी भी दर्द निवारक दवा के इस्तेमाल से बचना ठीक रहेगा जिसमें कोड़ीन हो। इससे आमतौर पर कब्ज़ हो सकता है।

कब्ज़ से बचें, मल मुलायम रहे

रेशेदार पदार्थ अधिक लें

आहार में रेशेदार यानी फाइबरयुक्त पदार्थों की मात्रा बढ़ाएं। रेशे (फाइबर) की मात्रा निम्न खाद्य पदार्थों में अधिक रहती है:

- गेहूं के चोकरयुक्त आटे की ब्रेड
- ब्राउन राइस
- ओट्स (जई)
- फलियां
- अनाज
- बीज
- फल एवं सुखाए गए फल
- सब्जियां
- प्राकृतिक अप्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ

अधिकाधिक तरल पदार्थों का सेवन करें

वयस्क व्यक्तियों को प्रतिदिन कम से कम 2 लीटर (लगभग 10-12 कप) तरल पदार्थ लेने की कोशिश करनी चाहिए। अधिकांश द्रव मूत्र के रूप में निकल जाता है किंतु उसका कुछ अंश आंतों तक पहुंचकर मल को मुलायम रखने में सहायक होता है।

फ़ाइबर सप्लीमेंट और रेचक औषधियां

उच्च फ़ाइबर युक्त आहार से मदद न मिल पाने की स्थिति में फ़ाइबर सप्लीमेंट (फूलने वाले घटक) लिए जा सकते हैं जैसे कि ईसबगोल की भूसी, मेथिल सेलुलोस या चोकर। मेथिल सेलुलोस सीधा मल तक पहुंच कर उसे मुलायम बना देता है जिससे मलत्याग में राहत मिलती है।

कभी-कभी लेक्टुलोज या मेक्रोजौल जैसी रेचक औषधियां भी ली जा सकती हैं। इनकी राय चिकित्सक भी दे सकता है और स्वयं औषधि विक्रेताओं से भी ये खरीदी जा सकती हैं।

शौच

हाजत महसूस होने पर उसे टालें नहीं। शौच लगने पर कई बार लोग टाल जाते हैं और बाद में शौच के लिए जाते हैं। ऐसा करने पर मल ज़म कर बढ़ जाता है और सख्त भी हो जाता है जिससे बाद में मलत्याग में कठिनाई होती है।

औषधि उपचार

अधिकांशतः गुदा-विदर एक दो सप्ताह में ठीक हो जाते हैं। कुछ व्यक्तियों में अधिक समय भी लग सकता है। गुदा-विदर छः सप्ताह तक भी ठीक न हो पाने और जीर्ण (क्रोनिक) स्थिति में पहुंच जाए तो भी काफ़ी संभावना रहती है कि वह स्वतः ठीक हो जाए और किसी औषधि उपचार की आवश्यकता न पड़े, हालांकि उपचार से आराम शीघ्रता से मिल सकता है।

उपचार का कारगर तरीका है: पहला, गुदा के आस-पास की पेशी के टोन को शिथिल करना। ऐसा करने पर रुधिर प्रवाह सहज हो जाता है और गुदा-विदर शीघ्रता से ठीक होने लगता है। दूसरा, मल को यथासंभव मुलायम रखना और उसे सहज रूप से त्यागें।

ग्लिसरिल ट्राइनाट्रेट मरहम

एक सप्ताह तक भी रोग लक्षणों में कमी न आने पर चिकित्सक ग्लिसरिल ट्राइनाट्रेट (जी टी एन) नामक औषधि का उपयोग करने की सलाह दे सकता है। उक्त औषधि रुधिर वाहिकाओं को प्रसारित करके विदर के आस-पास रुधिर की आपूर्ति बढ़ा देती है। रुधिर की आपूर्ति बढ़ जाने पर विदर शीघ्रता से ठीक होने लगता है।

जी टी एन से गुदा का दबाव भी कम होता है जिससे दर्द में आराम मिलता है। औषधि मरहम के रूप में मिलती है और सीधे गुदा क्षेत्र में, सामान्यतः हर 12 घंटे बाद लगाई जा सकती है।

जी टी एन गर्भवती या स्तनपान कराने वाली माताओं के लिए ठीक नहीं है। साथ ही बच्चों के लिए भी नहीं। इस प्रकार के औषधि उपचार का एक सामान्य अनुषंगी प्रभाव सिरदर्द होना है जो लगभग 50 प्रतिशत रोगी अनुभव करते हैं। कुछ लोग इस औषधि के प्रयोग के बाद सिर चकराना भी अनुभव करते हैं।

जी टी एन मरहम का उपयोग आमतौर पर छः से आठ सप्ताह तक, या फिर तब तक, जब तक कि विदर पूरी तरह सूख न जाए, करना पड़ सकता है।

जी टी एन मरहम कुछ व्यक्तियों को आराम पहुंचा सकता है, सभी को नहीं। इस बारे में किए गए अध्ययनों से यह पता लगा है कि जहां उपचार के बिना भी 10 में से 5 व्यक्तियों की स्थिति में सुधार आता है वहीं जी टी एन मरहम का उपयोग करने के बाद भी 10 में से केवल 6 व्यक्तियों को ही राहत मिल पाती है। अतः जी टी एन का प्रभाव औसत स्तर का ही होता है किंतु इसके उपयोग में कोई हर्ज़ भी नहीं है।

कैल्सियम चैनल ब्लॉकर

कैल्सियम चैनल ब्लॉकर उस प्रकार की औषधि है जिसे उच्च रक्तचाप के इलाज के लिए प्रयुक्त किया जाता है किंतु कुछ मामलों में इन्हें गुदा-विदरों में भी उपयोगी पाया गया है। स्थानिक कैल्सियम चैनल ब्लॉकर अवरोधिनी (स्फिंक्टर) पेशी को शिथिल कर देते हैं जिससे विदर के आस-पास रुधिर प्रवाह बढ़ने लगता है।

स्थानीय कैल्सियम चैनल ब्लॉकरों के भी अपने अनुषंगी प्रभाव हैं जिनमें से प्रमुख हैं: सिरदर्द, चक्कर आना (ख़ासतौर पर बैठकर या लेटने के पश्चात् उठने पर) और मरहम लगाते समय खुजली तथा जलन महसूस करना। हालांकि, ये अनुषंगी प्रभाव औषधि के अभ्यस्त हो जाने पर धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं।

इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि कैल्सियम चैनल ब्लॉकर जी टी एन से अधिक प्रभावी हों। अतः इनका परामर्श सिर्फ़ उन्हीं व्यक्तियों को दिया जाना चाहिए जो जी टी एन का प्रयोग न कर रहे हों या उसके लिए अनिच्छुक हों।

बॉटुलिनम टॉक्सिन

बॉटुलिनम टॉक्सिन एक अपेक्षाकृत नई उपचार पद्धति है। इसका उपयोग सामान्यतः तभी किया जाता है जब अन्य औषधि उपचार विफल रहे हों। यह एक तेज़ विष है किंतु अल्प मात्रा में इसका उपयोग सुरक्षित होता है। गुदा-विदर हो जाने पर इस टॉक्सिन का एक इंजैक्शन देकर अवरोधिनी पेशी को सुन्न कर दिया जाता है। इससे पेशी की ऐंठन दूर हो जाती है, दर्द कम होता है और गुदा-विदर भरने लगता है।

बॉटुलिनम टॉक्सिन अल्प या मध्य अवधि की राहत के लिए प्रभावी उपचार है जिससे चार में से तीन व्यक्ति उपचार के बाद छः महीने के लिए रोगलक्षण मुक्त बने रहते हैं। लंबी अवधि के आराम के लिए पुनः उपचार की ज़रूरत पड़ती है क्योंकि तीन वर्षों के बीच लगभग आधे लोगों में यह रोग लक्षण पुनः उभर आता है।

सर्जरी

सरल उपचार पद्धतियों के विफल हो जाने पर गुदा-विदर उपचार के लिए सर्जरी का विकल्प अपनाया जा सकता है। सर्जरी करवाने पर सफलता दर काफ़ी अधिक है, यानी 10 में से कम-से-कम 9 व्यक्ति रोगमुक्त हो जाते हैं।

आंतरिक स्फिंक्टेरोटॉमी

आंतरिक स्फिंक्टेरोटॉमी में अवरोधिनी पेशी के एक हिस्से को निकाल दिया जाता है। ऐसा करने पर पेशी दबाव कम हो जाता है, जिससे अवरोधिनी पेशी की ऐंठन में कमी आती है और गुदा-विदर में सुधार आने लगता है।

आंतरिक स्फिंक्टेरोटॉमी एक अपेक्षाकृत सीधा सरल ऑपरेशन है जिसमें केवल स्थानिक एनेस्थेसिया से काम चल जाता है और अस्पताल में भरती होने की जरूरत भी नहीं पड़ती।

उक्त ऑपरेशन एक प्रभावी उपचार है और इसकी सफलता दर भी अच्छी रही है। ऐसी सर्जरी करवाने वाले लोगों में 95 प्रतिशत लोगों को रोगमुक्ति मिल जाती है।

जटिलताएं

किसी भी अन्य ऑपरेशन की तरह इस ऑपरेशन में भी जटिलताओं की आशंका रहती है। सर्जरी करवाने के पश्चात् 10 में से 1 व्यक्ति गुदा पेशियों की क्षति के कारण मल त्याग में कुछ अनियंत्रण अनुभव करता है जो आमतौर पर मामूली ही होता है। व्यक्ति अपान वायु को रोक नहीं पाता। वह सहज ही गुदा मार्ग से निकल जाती है और कभी-कभार थोड़ा सा मल भी निकल सकता है।

फिशरक्टॉमी

फिशरक्टॉमी, ऑपरेशन द्वारा विदर हटाने की विधि है जिसमें आस-पास के ऊतक भी हटा दिए जाते हैं। फिशरक्टॉमी रोग के अंतर्हित कारणों को दूर नहीं कर पाती इसलिए स्फिंक्टेरोटॉमी की तुलना में इसका प्रयोग कम किया जाता है। इसी कारण फिशरक्टॉमी के बाद विदर पुनः उभर आते हैं।

वैसे स्फिंक्टेरोटॉमी की अपेक्षा, बच्चों के मामले में फिशरक्टॉमी का सुझाव दिया जा सकता है क्योंकि कम आयु में स्फिंक्टर पेशी का एक हिस्सा निकाल देने पर जीवनभर मल अनियंत्रण की समस्या से जूझना पड़ सकता है।

एडवांसमेंट ऐनल फ्लैप

एडवांसमेंट ऐनल फ्लैप का मतलब है, शरीर के किसी अंग से स्वस्थ ऊतक लेकर उनसे विदर के विकार को दूर करना जिससे विदर के आस-पास की पेशियों में अवरूद्ध रुधिर प्रवाह सुचारू रूप से चलने लगता है। इस विधि का उपयोग प्रायः उन जीर्ण गुदा विदरों के उपचार के लिए किया जाता है जो गर्भावस्था या गुदा में अन्य किसी क्षति के कारण बन जाते हैं।

पुनरावृत्ति का ज़ोखिम

कुछ लोगों में बारंबार गुदा विदर बनने की प्रवृत्ति रहती है। जी टी एन मरहम के उपयोग से स्वास्थ्य लाभ करने वाले लोगों में से लगभग 50 प्रतिशत लोगों में भविष्य में रोग के पुनः उभरने की आशंका रहती है। इन लोगों में सामान्यतः गुदा के आस-पास की पेशियों में औसत से अधिक दबाव (टोन) देखा गया है। खिंचाव बढ़ने पर पेशियों का यह टोन गुदा के द्वार में फटन उत्पन्न कर सकता है। हालांकि जी टी एन मरहम के पुनः प्रयोग से विदर की इस क्षति को दूर भी किया जा सकता है। यदि रोग की आवृत्ति कम अंतराल पर होने लगे तो उपचार का सर्जरी ही उपयुक्त विकल्प है।

बचाव

एक बार गुदा-विदर होने और उसके भर जाने के बाद भी ऐसे रोगियों में सामान्य स्वस्थ व्यक्तियों की अपेक्षा, भविष्य में कभी पुनः यह रोग होने की आशंका अधिक रहती है। इससे बचने का सर्वोत्तम उपाय है – सरल आम उपचारों से कब्ज को रोकने का प्रयत्न। उच्च फ़ाइबर युक्त आहार लें, काफ़ी मात्रा में तरल पदार्थ लेते रहें और वे सभी सावधानियां अपनाएं जिनसे मल कड़ा न हो सके।

(अनुवादः कुंकुम जोशी) ■

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां

बिमान बसु
ई–मेल : bimanbasu@gmail.com

तड़ित् झंझावातों का सूर्य से संबंध

वैज्ञानिकों ने सूर्य में होने वाली हलचल और पृथ्वी पर आने वाले तड़ित् झंझावातों के बीच एक संबंध खोज निकाला है। यूनाइटेड किंगडम में रीडिंग विश्वविद्यालय के मौसम विभाग के क्रिस्टोफर स्कॉट के नेतृत्त्व में शोधकर्त्ताओं के एक दल ने पृथ्वी पर तड़ित् झंझावातों में होने वाली वृद्धि और सूर्य से विकीर्णित होने वाले उच्च ऊर्जा कणों के प्रवाह के बीच एक सह-संबंध की खोज की है। शोधकर्त्ताओं ने पाया है कि तीस लाख किलोमीटर प्रति घंटे से अधिक की गति से गतिशील उच्च-गति सौर पवनों के पृथ्वी के वायुमंडल से टकराने के 40 दिन बाद तक पूरे उत्तरी यूरोप में तड़ित् झंझावातों की दर में काफी वृद्धि हुई (*एंवायरमेंटल रिसर्च लेटर्स*, 15 मई 2014 । doi:10.1088/1748-9326/9/5/055004)।

वैज्ञानिकों ने सूर्य की सक्रियता तथा पृथ्वी पर तड़ित् प्रहारों के बीच संबंध का पता लगाया है।

प्रकाश और ऊष्मा के अतिरिक्त सूर्य गर्म प्लाज्मा का एक निरंतर प्रवाह भी उत्सर्जित करता है जिसे सौर पवन कहते हैं और जो सौरमंडल में अत्यंत तीव्र गति से आगे बढ़ता है। सौर पवन में अधिकांशतः इलेक्ट्रॉन एवं प्रोटॉन होते हैं जिनकी ऊर्जा प्रायः 1.5 एवं 10 किलो इलैक्ट्रॉनवोल्ट (keV) के बीच होती है। यह सौर वायुमंडल की बाह्यतम गर्म परत सौर-प्रभामंडल से उत्सर्जित होती है। सौर पवन एक नियत बल से नहीं बहती बल्कि सौर सक्रियता के साथ-साथ इसकी गति कम-ज़्यादा होती है और इसकी शक्ति में घट-बढ़ होती रहती है। शोधकर्त्ताओं ने पाया कि जब सौर-पवन सर्वाधिक प्रबल होते हैं तो तड़ित् आघातों की संख्या भी अधिक होती है।

गर्जन-मेघ अपने अंदर विद्यमान सूक्ष्म हिमकणों के परस्पर टकराने तथा ऋणात्मक एवं धनात्मक आवेशों को धकेल कर अलग कर देने वाली वायु धाराओं के कारण विद्युतीय रूप से आवेशित हो जाते हैं। वायु एक अच्छा विद्युतरोधक है, इस कारण अलग हुए इलेक्ट्रॉन वापस लौटकर विद्युत स्थैतिक आवेशों को उदासीन नहीं कर पाते। किंतु यदि आयनीकृत वायु-अणुओं का मेघ के विभिन्न भागों के बीच अथवा मेघ और पृथ्वी के बीच एक ऐसा पथ बन जाए जो चालक की तरह व्यवहार करे तो परिणाम वज्रपात होता है।

पहले से यह जानकारी रही है कि वायु विद्युतरोधी होती है। अंतरिक्ष से आने वाली कॉस्मिक किरणें उसे आयनीकृत करके तड़ित् निर्माण में सहायता करती हैं। शोधकर्त्ताओं के अनुसार, सौर पवन का अपना स्वयं का चुंबकीय क्षेत्र होता है और जब उच्च-गति सौर पवन कण अंतरिक्ष से चलते हैं तो वे स्थानिक चुंबकीय क्षेत्र को प्रबलित करते हैं जो कुछ कणों को धकेल कर उनकी गति को और भी अधिक बढ़ा देते हैं। ये तथाकथित सौर ऊर्जित कण-कम गति से चलने वाले अन्य कणों के विपरीत इतने पर्याप्त ऊर्जा समृद्ध होते है कि वे पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र को भेदते हुए, वायुमंडल में चलकर उन ऊंचाइयों तक पहुंच जाते हैं जहां गर्जन-मेघ बनते हैं। उसी समय पृथ्वी पर पंहुचने वाले सौर कणों की संख्या 6 प्रतिशत बढ़ जाती है। यदि सौर कण वायु को उसी प्रकार आयनीकृत करें जैसे कॉस्मिक किरणें करती हैं तो कुल प्रभाव मुक्त इलेक्ट्रॉनों में वृद्धि होनी चाहिए जो एक भारी विद्युत विसर्जन को जन्म देगा। परिणामस्वरूप जब सौर पवन प्रबलता अपने शिखर पर होगी तो तड़ित् आघातों की संख्या बढ़ जाएगी।

इस संकल्पना की जांच के लिए शोधकर्त्ताओं के दल ने नासा के एडवांस्ड कंपोजिशन एक्सप्लोरर (ए सी ई) अंतरिक्षयान, जो सौर पवन में विद्यमान ऊर्जित कणों को मापता है, से प्राप्त आंकड़ों की तुलना, यू. के. मौसम कार्यालय के लिए मॉनीटरनकारी स्टेशनों द्वारा 2000 से 2005 के बीच प्रेक्षित तड़ित् दर के आंकड़ों से की। एक सौर पवन झौंके के बाद के 40 दिनों में यू.के. ने औसतन 422 तड़ित् आघात देखे। इसके विपरीत सौर पवन झौंके से पहले के 40 दिनों में औसतन 321 तड़ित् आघात देखे गए।

शोधकर्त्ताओं के अनुसार, चूंकि सौर-पवन प्रबलता शिखर नियमित क्रम में आते हैं और उनके चक्रों का मॉनीटरन ए सी ई जैसे अंतरिक्षयानों द्वारा किया जा रहा है, इसलिए खतरनाक झंझावातों की भविष्यवाणी करना संभव होना चाहिए। उनका यह भी कहना है कि यदि एक झंझावात आ रहा है तो सौर पवन संबंधी डाटा का उपयोग करके मौसम विज्ञानी यह बताने में समर्थ हो सकेंगे कि यह झंझावात कितना गंभीर होगा।

मैग्नेटार की पहेली सुलझी

मैग्नेटार चुंबकीय तारा है – एक न्यूट्रॉन तारा जिसका चुंबकीय क्षेत्र सामान्यतः पल्सर कहे जाने वाले न्यूट्रॉन तारे की तुलना में 100 गुना से भी अधिक प्रबल होता है। मैग्नेटार का चुंबकीय क्षेत्र पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र से दस हजार खरब (10^{15}) गुना प्रबल होता है, और यह इतना तीव्र होता है कि सतह को 1 करोड़ डिग्री सेल्सियस तक गर्म कर देता है। 16,000 प्रकाश वर्ष दूर, दक्षिणी तारामंडल 'अरा' में स्थित वेस्टरलुंड 1 तारा समूह में, आकाशगंगा में ज्ञात दो दर्जन मैग्नेटारों में से एक तारा अवस्थित है। इसको CXOU J1647-45 कहा जाता है और यह खगोलविदों के लिए एक बड़ी पहेली बना हुआ है।

चित्रकार द्वारा निर्मित यह प्रस्तुति एक अत्यंत सघन युवा तारक समूह वेस्टरलुंड 1 में एक मैग्नेटार को दर्शाता है। इस उल्लेखनीय तारक समूह में सैकड़ों विशाल तारे हैं जिनमें से कुछ तो 10 लाख सूर्यों से भी अधिक दीप्ति से चमक रहे हैं (साभारः ESO/L.Calcada*)।*

सभी न्यूट्रॉन तारों की तरह ही मैग्नेटार भी एक अधिनवतारे की क्रोड के निपात से बनते हैं। अधिनव तारा हमारे सूर्य के द्रव्यमान के 40 गुना से भी अधिक भार के तारे की अंतिम मरण अवस्था है। ये व्यास में लगभग 20 कि.मी. किंतु अत्यधिक सघन होते हैं, जिनका द्रव्यमान एक या दो सौर-द्रव्यमानों के बराबर होता है (एक न्यूट्रॉन तारे के एक चम्मच द्रव्य का द्रव्यमान लगभग 1 अरब टन होगा)। सामान्यतः, जब एक अत्यंत भारी तारे का निपात अधिनव तारक विस्फोट के दौरान उसके अपने गुरुत्व के अधीन होता है या तो एक न्यूट्रॉन तारा (जिसे पल्सर भी कहते हैं) बनता है या फिर एक ब्लैक होल बनता है। मैग्नेटार एक न्यूट्रॉन तारे का असाधारण और अत्यंत अनोखा रूप है।

मैग्नेटारों को 'सॉफ्ट गामा रिपीटर्स' (एस जी आर) भी कहा जाता है क्योंकि वे मृदु (अर्थात निम्न ऊर्जा) गामा किरणों की चमकीली आवर्ती, क्षणदीप्तियां उत्सर्जित करते हैं। मैग्नेटारों की सतह की पर्पटी में विशाल प्रतिबलों के परिणामस्वरूप अचानक होने वाला समंजन जिसे 'स्टारक्वेक' कहा जाता है, उनकी सतह से बड़े परिमाण में गामा-किरणें विमुक्त करता है। मैग्नेटारों की खोज सन् 1979 में उस समय हुई थी जब गामा किरणों का एक शक्तिशाली झोंका सौरमंडल को संस्पर्श करते हुए गुज़रा और उसके कारण संसूचकों ने जो मान दर्शाए वे पहले संसूचित किए गए सब मानों से अधिक थे। हमारे सौरमंडल में विभिन्न स्थलों पर विद्यमान नौ अंतरिक्ष यानों पर लगे गामा किरण संसूचकों ने एक तीव्र विकिरण स्पाइक रिकॉर्ड की। इन तारों की भौतिक प्रकृति अनेक वर्षों तक रहस्य बनी रही। सन् 1992 में यह सुझाव दिया गया कि एस जी आर एस चुंबकीय रूप से शक्तिकृत न्यूट्रॉन तारे हैं। बाद में किए गए प्रेक्षणात्मक अध्ययनों ने इस परिकल्पना को पुष्ट किया।

खगोलभौतिकीविदों के अनुसार, मैग्नेटारों को नाभिकीय संलयन या घूर्णन जैसे किसी पारंपरिक प्रक्रम से शक्ति प्राप्त नहीं होती है और हाल ही तक उनके अस्तित्व की कोई युक्तियुक्त व्याख्या ज्ञात नहीं थी। खगोलज्ञों का अब यह मानना है कि उन्होंने पहली बार मैग्नेटार का सहयोगी तारा ढूंढ निकाला है जो इसकी निर्मिति के सूत्र उद्घाटित करता है। यह खोज यह समझने में सहायता करती है कि मैग्नेटार कैसे निर्मित होते हैं, जो एक ऐसी पहेली थी जो पिछले 35 वर्षों से अनसुलझी रही थी।

मैग्नेटार कैसे बनते हैं इस संबंध में खगोलज्ञों ने पहले भी एक व्याख्या प्रस्तुत की थी। उन्होंने यह सुझाव दिया था कि मैग्नेटार एक अत्यंत संहत बाइनरी प्रणाली के दो बहुत भारी एक दूसरे की परिक्रमा करते हुए ऐसे साथी तारों के बीच की अन्योन्यक्रियाओं से उत्पन्न होते हैं जो सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी में समा सकते हैं। किंतु, अभी तक वेस्टरलुंड 1 तारक समूह के मैग्नेटार की स्थिति पर किसी साथी तारे की उपस्थिति प्रेक्षित नहीं की गई थी। इसलिए खगोलज्ञों ने यूरोपीय दक्षिणी वेधशाला की चिली स्थित पैरानल वेधशाला के वेरी लार्ज टेलीस्कोप (वी एल टी) का उपयोग, तारक समूह के अन्य भागों में इस साथी तारे की उपस्थिति तलाशने के लिए किया। उन्होंने पलायनकारी तारों, अर्थात समूह से उच्च वेग से दूर भागते ऐसे तारों की तलाश शुरू की जो संभवतः उस अधिनवतारक विस्फोट के कारण लगे आवेग के फलस्वरूप अपनी कक्षा से छिटक गए होंगे जिससे मैग्नेटार बना था। वेस्टरलुंड 1-5 नामक तारा ठीक यही कर रहा था; यही वह पलायनकारी तारा था जिसकी खगोलज्ञों को तलाश थी और जिसके बारे में उनका विचार था कि यही अध्ययनगत मैग्नेटार के बनने के लिए उत्तरदायी था। वेस्टरलुंड 1 तारक समूह के मैग्नेटार संबंधी संकलित डाटा के आधार पर अब यह माना जाता है कि मैग्नेटार नाम से ज्ञात दुर्लभ न्यूट्रॉन तारों के निर्माण की कुंजी बाइनरी तारों के द्रुत घूर्णन और उनके बीच द्रव्यमान के विनिमय में निहित है।

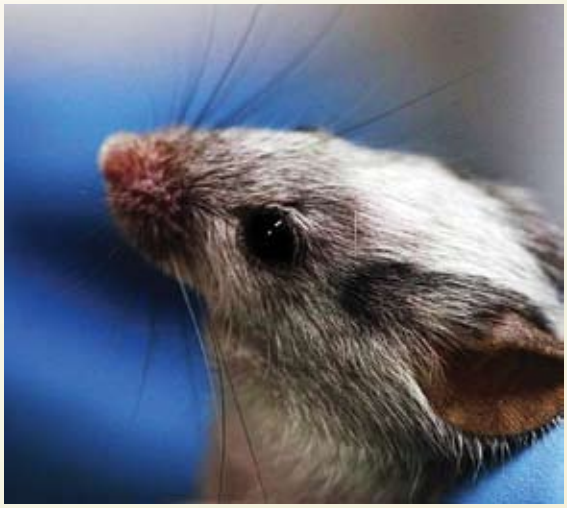

वैज्ञानिकों ने जीनोम संपादन करके एक मूषक में आनुवंशिक विकार का उपचार कर दिया है। इस विधि से उत्परिवर्तित डी एन ए में संशोधन किया जाता है।

यकृत रोगोपचार हेतु डी एन ए 'संपादित'

अब पहली बार वैज्ञानिक सी आर आइ एस पी आर (क्लस्टर्ड रेग्युलरली इंटरस्पेस्ड शॉर्ट पेलिनड्रॉमिक रिपीट्स) नाम की एक क्रांतिकारी नई तकनीक का उपयोग करके मानव जीनोम के किसी भी भाग का संपादन अत्यंत परिशुद्धता से कर सकते हैं। इस तकनीक की समतुल्यता विश्वकोश के किसी चुने गए पृष्ठ पर बिना वर्तनी की गलती किए एकल अक्षरों के संपादन से की गई है। इस तकनीक में ऐसा, एंज़ाइमों का उपयोग करके डी एन ए डाटाबेस के विशिष्ट भागों को लक्ष्यित करने के लिए किया जाता है। इस तकनीक को विकसित करने वाले वैज्ञानिकों के अनुसार, इस तकनीक के द्वारा यह संभव हो जाता है कि मानव गुणसूत्रों के 23 जोड़ों के डी एन ए की विशिष्ट स्थितियों पर बिना अवांछित उत्परिवर्तनों अथवा दोषों के प्रवर्तन के सर्वाधिक यथार्थ एवं विस्तृत परिवर्तन किए जा सकें। सी आर आइ एस पी आर (उच्चारण 'क्रिस्पर') का उपयोग करके मैसाच्युसेट्स इंस्टिट्यूट ऑफ टैक्नोलॉजी, कैंब्रिज, अमेरिका के शोधकर्त्ताओं ने एकल आनुवंशिक उत्परिवर्तन के कारण होने वाले एक विरले यकृत रोग से ग्रस्त चूहे को रोगमुक्त करने में सफलता प्राप्त की। यह परिणाम इस बात का पहला प्रमाण है कि जीन-संपादन की यह तकनीक जीवित जंतुओं में रोग के लक्षणों को दूर कर सकती है (*नेचर बायोटैक्नोलॉजी*, 30 मार्च 2014 । doi: 10.1038/nbt.2884)। यह तकनीक इतनी सटीक है कि वैज्ञानिकों को विश्वास है, इसका उपयोग करके शीघ्र मानवों पर सिकल सेल एनीमिया, डाऊन सिंड्रोम तथा हंटिंगटन रोग जैसी आनुवंशिक बीमारियों के उपचार के लिए परीक्षण किए जा सकेंगे।

अभी तक, आनुवंशिक दोष दूर करने के लिए अत्यंत त्रुटिपूर्ण विधियों का उपयोग किया जाता था जिनमें रूपांतरित वायरस जीनोम में यादृच्छिक रूप में डी एन ए प्रविष्ट कराते थे। यह अनेक रोगियों के लिए अत्यंत घातक समझा जाता था। किंतु नई विधि ने आनुवंशिक अभियांत्रिकी को आमूल परिवर्तित कर दिया है क्योंकि यह सहज और आसान है और इसका उपयोग डी एन ए अणु की एकदम एकल रासायनिक निर्णायक इकाई अथवा जीन निर्माण करने वाले न्यूक्लिओटाइडों तक किसी भी वांछित भाग के संपादन के लिए किया जा सकता है।

सी आर आइ एस पी आर तकनीक का आधार वह कोशिकीय प्रक्रिया है जिसका उपयोग बैक्टीरिया वायरस-संक्रमण से अपनी रक्षा के लिए करते हैं। शोधकर्त्ताओं ने जीन-संपादन सम्मिश्र निर्मित करने के लिए इस कोशिकीय प्रणाली की प्रतिकृति बनाई जिसमें सी ए एस 9 (Cas9) नामक एक डी एन ए-कर्तक एंज़ाइम शामिल था जो एक ऐसे लघु आर एन ए तंतु के साथ जुड़ा हुआ था जिसको एक विशिष्ट जीनोम अनुक्रम के साथ बंध बनाने के लिए प्रोग्रामित किया गया था और जो सी ए एस 9 को यह बताता था कि इसको कहां पर काटना है। साथ ही शोधकर्त्ताओं ने एकल-तंतु डी एन ए टैंपलेट का उपयोग भी किया। जब कोशिका सी ए एस 9 द्वारा पहुंचाई गई क्षति को सुधार लेती है तो यह टैंपलेट से अनुकृति बनाती है और इस प्रकार जीनोम में नया आनुवंशिक पदार्थ डाल कर दोष को ठीक कर देती है।

इस ताजा अध्ययन के लिए शोधकर्त्ताओं ने तीन ऐसे निदर्शी आर एन ए तंतुओं को डिजायन किया, जो टायरोसिनेमिया – एक आनुवंशिक रोग जिसमें अधिकांश प्रोटीनों की निर्माणक इकाई टायरोसीन

नामक ऐमीनो अम्ल का स्तर रुधिर में बढ़ जाता है – के कारण उत्परिवर्तन के निकट विभिन्न डी एन ए अनुक्रमणों को अपना लक्ष्य बनाते हैं। टाइप-1 टायरोसिनेमिया से यकृत एवं वृक्कों का कार्य न कर पाना, तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करने वाली समस्याएं तथा यकृत कैंसर के जोखिम में वृद्धि जैसी समस्याएं हो सकती हैं। यह यकृत की एक गंभीर व्याधि है जो एक ऐसे जीन में दोष के कारण उत्पन्न होती है जो एफ ए एच (FAH) नामक एक एंज़ाइम को कोडित करता है। इस रोग से ग्रस्त व्यक्तियों में जो 1,00,000 व्यक्तियों में से एक को होता है, ऐमीनो अम्ल टायरोसिन विघटित नहीं होता जिससे यह संचयित होता जाता है और यकृत को खराब कर देता है। नवीनतम उपचारों में शामिल हैं: कम-प्रोटीन वाला आहार और टायरोसीन उत्पादन को अवरूद्ध करने वाली एक औषधि जिसे एन टी सी बी कहते हैं।

ऐसे वयस्क चूहों पर किए गए प्रयोगों में जिनमें एफ ए एच एंजाइमों का उत्परिवर्तित रूप विद्यमान था, शोधकर्त्ताओं ने सी ए एस 9 के लिए बंधित जीन के साथ आर एन ए तंतु तथा एफ ए एच जीन के सही अनुक्रमण युक्त-न्युक्लिओटाइड डी एन ए टैंपलेट प्रदान किया। इस विधि का उपयोग करके सही जीन को, हेपैटोसाइट नामक यकृत कोशिकाओं की 250 में से एक कोशिका में प्रविष्ट कराया गया। अगले 30 दिन इन स्वस्थ्य कोशिकाओं ने अपना विस्तार करना और रोगी यकृत कोशिकाओं को प्रतिस्थापित करना शुरू किया और अंततः कुल हेपैटोसाइटों के लगभग एक तिहाई का स्थान ग्रहण कर लिया। रोग चिकित्सा के लिए इतना काफी था और मूषक एन सी टी बी उपचार बंद कर देने के बाद भी जीवित रहे।

मकड़ी के जीनोम का अनुक्रमण

इतिहास में पहली बार, डेनमार्क और चीन के एक शोधकर्त्ता दल ने मकड़ी के जीनोम को अनुक्रमित किया है जो यह दर्शाता है कि मानव की मकड़ी के साथ कुछ जीनोमी-समानताएं हैं। अन्य संधिपादों के विपरीत, जिनके जीनोम मानवों से बिल्कुल भिन्न हैं, मानवों की तरह ही मकड़ियों में भी इंट्रोन लंबे और एक्सोन छोटे होते हैं (इंट्रोन एवं एक्सोन जीन के भाग होते हैं जिनमें से एक्सोन प्रोटीन कोडन के लिए उत्तरदायी होते हैं)। यह तथ्य कि आठ पैरधारी रेंगने वाली मकड़ी कुछ मायनों में मानव से मिलती-जुलती होती है, इस अध्ययन का एक विस्मयकारी निष्कर्ष है।

यह जीनोम मानचित्रण आर्हस विश्वविद्यालय, डेनमार्क तथा बीजिंग जीनोमिक्स इंस्टिट्यूट (बी जी आई), चीन के शोधकर्त्ताओं के एक अंतर्राष्ट्रीय दल द्वारा किया गया था (*नेचर कम्युनिकेशंस*, 6 मई 2014 । doi:1038/ncomms4765)। शोधकर्त्ताओं ने दो प्रकार की मकड़ियों पर शोध किया। इनमें से एक छोटी (रोएंदार) वेल्वेट मकड़ी है और दूसरी बड़ी मकड़ी टेरेंटुला है। वेल्वेट मकड़ी का जीनोम अनुक्रमण कार्य तो सफलतापूर्वक पूरा हो चुका है किंतु टेरेंटुला के आनुवंशिक मानचित्रण में अभी भी कुछ अनसुलझी रिक्तियां हैं।

मकड़ियां अरैकनिड वर्ग का सबसे बड़ा समूह है। सभी मकड़ियों की आठ टांगें होती हैं और ये छः महाद्वीपों में पाई जाती हैं। वास्तव में, एकमात्र स्थान जहां आज तक कभी मकड़ियां नहीं पाई गई हैं, अंटार्कटिका है। इन प्राणियों ने अपने आप को पर्यावासों के एक बड़े परिसर के लिए सफलतापूर्वक

वेल्वेट मकड़ी (ग्रैंडानामेनो क्रोमे प्र.)

अनुकूलित कर लिया है। तथापि, वैज्ञानिक इन जीवों को गहराई से समझने के प्रयास कर रहे हैं और नवीनतम मानचित्रित जीनोम मकड़ी के अनेक रहस्यों को खोलने की कुंजी साबित हो सकता है।

वेल्वेट मकड़ी के जीनोम के मानचित्रण के बाद शोधकर्त्ता और आगे बढ़े और उन्होंने उन प्रोटीनों की संरचना का विश्लेषण किया जो मकडियां जाले के सूत्रों का निर्माण करते समय या विष स्रावित करते समय उत्पन्न करती हैं। प्रोटीन विश्लेषण ने हमारे अभी तक के मकड़ियों संबंधी ज्ञान में और वृद्धि की है।

मकड़ी के जाल के सूत्रों में, इनकी मजबूती की वजह से, लंबे समय से वैज्ञानिकों और अभियांत्रिकों दोनों की ही रूचि रही है। शोधकर्त्ताओं के अनुसार यह नया अध्ययन मकड़ जाल-सूत्रों की मजबूती का रहस्य खोलने में कुछ सहायता कर सकता है जिसके बारे में कहा जाता है कि समान भार के लिए तुलना करें तो यह स्टील के तार से कम-से-कम पांच गुना अधिक मजबूत होता है। शोधकर्त्ताओं द्वारा किए गए विश्लेषण से मकड़ जाल के तंतुओं का उपयोग औद्योगिक अनुप्रयोगों के लिए तथा ऐसे अधिक मजबूत कृत्रिम पदार्थों के विकास के लिए किया जा सकता है जो प्राकृतिक मकड़ जाल तंतु के गुणों से स्पर्धा कर सकें। नए अनुसंधान से औषधियों और अध्ययन के अन्य क्षेत्रों में मकड़ जाल तंतुओं के उपयोग के द्वार भी खुल सकते हैं।

मकडियों द्वारा स्रावित प्रोटीनों के विश्लेषण से मकड़ियों से संबंधित हमारी अद्यतन जानकारी में भी वृद्धि हुई है। यह भी अच्छी तरह ज्ञात है कि मकड़ियों का विष मानवों के लिए अत्यंत घातक हो सकता है। इस विष के संबंध में समुचित ज्ञान होने से मकड़ियों द्वारा काटे जाने के उपचार को अधिक प्रभावी बनाया जा सकेगा।

मानव और मकड़ी के जीनोमों में समानता को अगर छोड़ भी दें तो भी पूरी तरह मानचित्रित मकड़ी के जीनोम का ज्ञान मकड़ियों के संबंध में हमारे ज्ञान में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकता है। उनके जीनोम के अध्ययन से वैज्ञानिकों को उस जानकारी के खजाने के द्वार खोलने में मदद मिलेगी जो यह समझा सकेगी कि मकड़ियों का विकास कैसे हुआ है और वे कैसे कार्य करती हैं।

(अनुवादः रामशरण दास) ■

शुद्धिपत्र

लेख "सर आशुतोष मुखर्जीः एक गणितज्ञ खासकर" (*ड्रीम 2047*, जून 2014) का श्री रामशरण दास ने हिंदी में अनुवाद किया गया है, लेकिन अनुवादक का नाम गलती से रूपेंद्र शर्मा छपा था। त्रुटि के लिए खेद है।

ड्रीम 2047

लेख आमंत्रित हैं
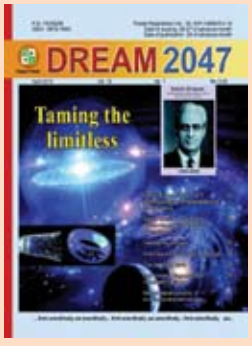
विज्ञान प्रसार, अपनी मासिक पत्रिका *ड्रीम 2047* के लिए विज्ञान लेखकों से लोकप्रिय विज्ञान पर मूल लेखों को आमंत्रित करता है। वर्तमान में इस पत्रिका के 50,000 से अधिक सदस्य हैं। अधिकतम 3000 शब्दों सहित यह लेख हिंदी या अंग्रेजी में भेजे जा सकते हैं। नियमित कॉलम i) स्वास्थ्य ii) विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां पर लेखों का भी स्वागत है। अगर लेख प्रकाशन के लिए स्वीकार कर लिया जाता है तो विज्ञान प्रसार के मानदंड के हिसाब से लेखक (कों) को भुगतान किया जाएगा। अधिक जानकारी के लिए देखें www.vigyanprasar.gov.in या ई–मेल करें dream@vigyanprasar.gov.in